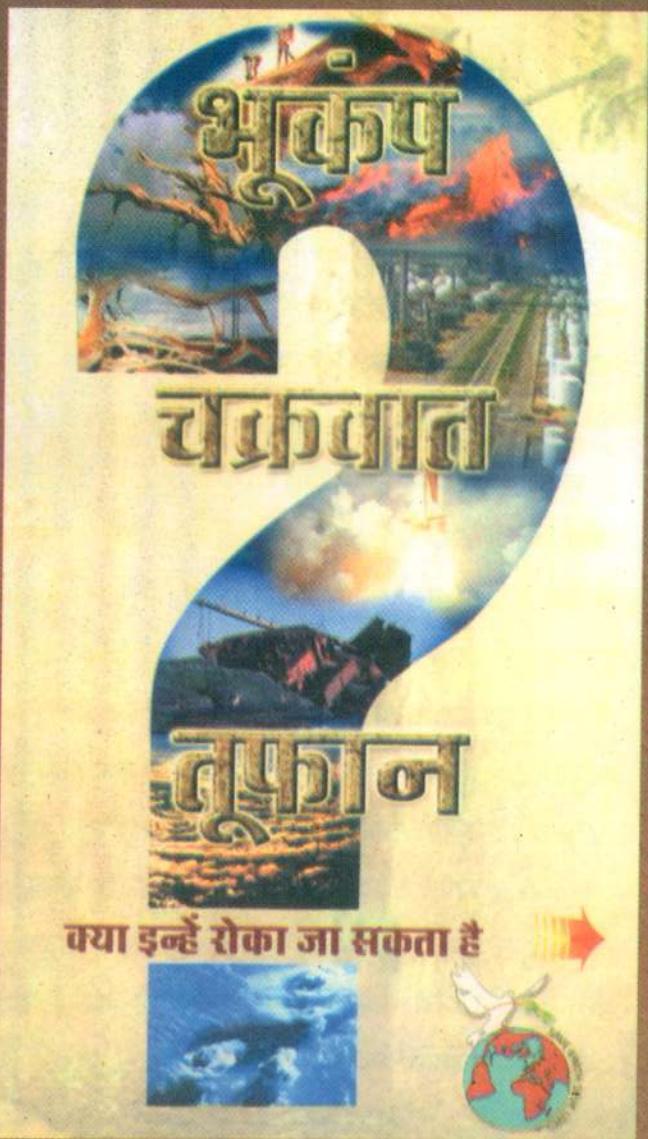


# हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों?

(हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रकोपादि)



वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनन्दी गुरुदेव

## हिंसामय यज्ञा का प्रारम्भ क्यों?

(हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रक्रोपादि)

१००१ - लोकी

### (1) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान तथा

## (2) धर्मदर्शन सेवा संस्थान

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

- (१) धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
- (२) एवं धर्म दर्शन सेवा संस्थान क्रमांक - 44

हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ?

(हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रकोपादि)

पावन प्रसंग - भगवान महावीर की 2600 वीं जन्मजयन्ती  
लेखक - आचार्य रत्न कनकनंदी जी गुरुदेव

धर्मशब्द मात्रेणप्रायेण प्राप्तीनोऽधमा : ॥

अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड़ चेतसः : ॥

अर्थात् धर्म के नाम पर प्रायशः अधम प्राणी विचार की जड़ता के कारण अधर्म का ही सेवन करते हैं । कहाँ स्व-पर को सुख - शांति प्राप्त करने का साधन धर्म है तो कहाँ स्व-पर को दुःख - पीड़ा प्राप्त करने के साधनस्वरूप भेदभाव, पक्षपात, ईर्ष्या, द्वेष, फूट, लूट, युद्ध, कलह, हिंसा, जीववति को भी धर्म के साधन तथा धर्म स्वरूपमें अपनाना/ प्रयोग करना । जिससे भी अशान्ति, विषमता, विदेष, हिंसा, द्रव्य-भाव प्रदूषण हो वह कभी भी धर्म नहीं हो सकता है भले ही धर्मग्रंथों में वर्णन हो, धर्मप्रचारकों द्वारा मान्यता प्राप्त हो, करोड़ों-अरबों लोग उसे मानते हो । अनुभवरूपी धर्मग्रंथ/ धर्म प्रशिक्षण का सार यह है कि भाव को सरल-सहज, पवित्र-अहिंसक, उदार, कोमल, मृदु, विनम्र बनाना और दूसरों से सदृश्यवहार करना अर्थात् मनसा, वचसा, कर्मणा, अपीड़िकारक तथा आनन्दायक व्यवहार करना है । आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी धन, भोजन, स्वास्थ्य, औषधि, मनोकामना की पूर्ति, देवता की सन्तुष्टि यहाँ तक कि भगवान/ धर्म के लिए भी जो भ्रष्टाचार, आतंकवाद, तोड़फोड़, युद्ध, कलह, हत्या, हिंसा, जीववति आदि करते हैं यह उनका पिछड़ापन, अविवेक, वर्वरता, जड़ता, रुद्धिवादिता, अंधश्रद्धा, नीचता, दुष्टता, कट्टरता, अधार्मिकता का ही परिचायक है । यह सब वर्णन जैन, बौद्ध, हिन्दू धर्म तथा आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में इस कृतिमें किया गया है ।

आचार्यकनकनंदी

मूल्य (ज्ञान प्रचारार्थ आपकी सहयोगराशि) = 25.00

द्वितीय संस्करण - नवीन/ संशोधित/ परिवर्द्धित संस्करण - 2002

प्रतियाँ - 1000

[www.jainkanaknandhi.org](http://www.jainkanaknandhi.org)

Email - [info@jainkanaknandhi.org](mailto:info@jainkanaknandhi.org)

[jainkanaknandhi@rediffmail.com](mailto:jainkanaknandhi@rediffmail.com)

1 धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान - बड़ौत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलुम्बर, मुंबई, अमेरिका

2 धर्म दर्शन सेवा संस्थान - उदयपुर (राज.) एवं अमेरिका

पंजीयन क्रमांक/18/उदयपुर 01-02

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

## प्रकाशन एवं प्राप्तिस्थान

1. श्री प्रो. सुशीलचंद्रजी जैन, फोन नं. (01234) 62845 'धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान', निकट दि. जैन धर्मशाला - बड़ौत (यू.पी.)
2. श्रीमती रत्नमाला जैन W/o श्री राजमलजी जैन (वैज्ञानिक) 4-5 आदर्श कॉलोनी, पुलाँ - उदयपुर - फोन नं. (0294) 440793
3. श्री गुणपालजी जैन (इंजीनियर) फोन नं. (0131) 450229 बेहड़ा भवन, 87/1, कुंदनपुरा, मुजफ्फरनगर (यू.पी.)
4. श्रीमती लक्ष्मी गुरुचरणजी जैन (वकील - मुंबई हाईकोर्ट) 144 मुवी टावर, नीयर मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स, अंधेरी (प.) मुंबई - 400053 फोन नं. (022) 6327152, 6312124, 6327152
5. सेवाश्री, सुरेखा जैन (शिक्षिका) W/o श्री वीरेन्द्रजी डालचंदजी गडिया कपड़े के व्यापारी - सलुम्बर - जि. उदयपुर (राज.) 313001 फोन नं. (02906) 31143 लोकल 916
6. श्री महावीरकुमार जैन, श्रीमती सुरुचि उन्नत जैन (गोयल) B.Sc, B.Ed. M.Sc., 13, अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी, कोटा (राज.) फोन नं. (0744) 410818, 363992
7. धर्म दर्शन सेवा संस्थान C/o चंद्रप्रभु दि. जैन मंदिर आयड़, छोटूलाल जी चितौड़ा, आयड़ बस स्टेन्ड के पास, उदयपुर (राज.) 313001 फोन (0294) 413565
8. Praduman S. Zaveri  
(धर्म दर्शन सेवा संस्थान के परम शिरोमणि संरक्षक  
(प्रस्तुत पुस्तक के द्रव्यदाता भी)  
(M.S. Electronics Engineer) 5829 Broadwell, Drive Plano,  
Texas 75093 U.S.A. 011-972-608-0400  
email Laxmi Zaveri@yahoo.com

: टाइप सेटिंग्स :

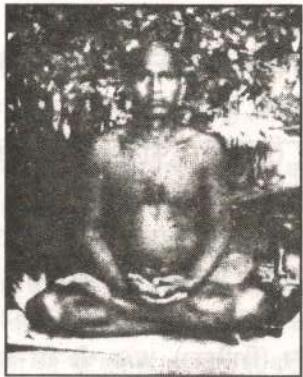
श्री कुंथुसागर ग्राफिक्स सेन्टर

25, शिरोमणि बंगलोड़ा, सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026.

फोन : 5851771, 5850744

III

## आशीर्वचन



सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ कैसे हुआ, सर्वज्ञ के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता। किन्तु यह एक शाश्वत सत्य है कि प्राणी स्वभावतः अहिंसक है तथा अहिंसा का उपासक है। यदा—कदा भ्रष्ट व्यक्तियों ने उन्हें पथ से विचलित करने का प्रयास किया है किन्तु ऐसे प्रत्येक परीक्षा काल में तीर्थकरों ने आकर उन्हें जाग्रत किया है तथा करुणा की एक अनन्त धारा प्रवाहित की है।

समय—समय पर कुछ पथ विचलित व्यक्तियों ने पूजा विधान आदि में परिवर्तन किये, यज्ञ आदि प्रारम्भ करके उनमें निरीह पशु बलि को भी उचित ठहरा दिया। किन्तु जनमानस ने तत्कालीन महापुरुषों के कथन से अपनी भूल को समझा तथा सद्मार्ग का पुनः आचरण करने लगे। उपाध्याय कनकनंदी महाराज ने इस पशु बलि व उसके निषेध को अपनी इस पुस्तक में अपनी विद्वत्तापूर्ण लेखनी से समझाया है। विशेष प्रसन्नता का विषय है कि इस पुस्तक के प्रकाशन में जैन व अजैन सभी धर्मप्रेमी बन्धु सहयोग दे रहे हैं। इस पुस्तक का प्रकाशन भी इसीका प्रमाण है। मेरा उन्हें आशीर्वाद है कि वे अपनी बुद्धि, समय व लक्ष्मी का इसी प्रकार सदुपयोग करते रहें।

— गणधराचार्य कुन्धुसागर  
(प्रथम संस्करणसे)

## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
(I) भावनाभूती	1
(II) हृदयोद्गार	6
(III) पुरोवाक्	11
(1) हिंसात्मक यज्ञ का प्रारम्भ	27
(2) हिन्दु धर्म में वर्णित हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ	46
(3) यज्ञ में हिंसा की निन्दा और अहिंसा की प्रशंसा	57
(4) पशु बलिदान का प्रारंभ	66
(5) बलिदान (हिंसा) का कटुफल	72
(6) यथार्थ यज्ञ तथा ब्राह्मण	76
(7) दयालु रावण द्वारा हिंसात्मक—यज्ञ का विरोध	81
(8) बौद्ध धर्म में यज्ञों का खण्डन	87
(9) उपनिषद् में वर्णित यज्ञ	96
(10) हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रकोप (हिंसा का वैज्ञानिक शोध—बोध)	104
(I) धार्मिक दृष्टि से पुण्य—पाप का फल	106
(II) वैज्ञानिक दृष्टि से पुण्य—पाप का फल	115



## भ॒रतीयज्ञली

देश में बढ़ रही हिंसा को रोकने के लिए महावीर के सिद्धान्तों की प्रासंगिकता  
साध्वी ऋद्धिश्रीजी

(संघर्ष : वैज्ञानिक धर्मचार्य कनकनंदी जी गुरुदेव)

भगवान् महावीर ने जीओ और जीने दो का संदेश केवल मनुष्यमात्र के लिए ही नहीं दिया था, बल्कि उन्होंने यह संदेश विश्व के सभी जीवों के प्रति आपसी प्रेम को दर्शाते हुए आज से 2600 वर्ष पूर्व दिया था। भगवान् महावीर ने मानव को यह दिव्य दृष्टि दी कि तुम्हारा जीवन ‘सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय’ है, परन्तु आज का यह मानव महावीर के दिव्य संदेशों को भूलकर केवल स्वयं को सुख देने के लिए प्रयत्नशील है। अपनी जिवा के स्वाद के लिए न जाने कितने ही प्राणियों की हिंसा करने के लिए तत्पर है। अपने शरीर को सुंदर दिखाने के लिए न जाने कितने मासूम जीवों की हत्याये करता है। यही कारण है कि आज देश में प्रति दो घन्टे में एक नया कल्पखाना स्थापित हो रहा है। भारत सरकार कल्पखानाओं के निर्माण के लिए 75% से लेकर 100% तक की आर्थिक सहायता दे रही है। आज करोड़ों पशुओं की निर्ममता के साथ प्रतिवर्ष हत्यायें हो रही हैं। 1998 में एक करोड़ 50 लाख गोवंश की हत्या करके 1300 टन गोमांस निर्यात किया गया था। पशुओं के साथ यह कूरतम स्वार्थी, निकृष्टतम मनुष्य कितना अत्याचारपूर्ण व्यवहार करता है। इसकी कल्पना मात्र से ही शरीर में सिंहरन पैदा होती है। ‘हजारों डिग्री सेन्टीग्रेड पर खौलता हुआ जल, छत के कुन्डों से लटकती हूई मोटी रसियाँ, भाँति 2 के अत्यधिक तीक्ष्ण, पैनें औजार, हत्या के लिए तत्पर कृष्ण, नीललेश्यावाले कसाई..... और फिर भययुक्त काँपती हुई चीत्कार, तड़फड़ाहट, बद्दुआयें, अपने कुटुम्ब के विछोह में सिसकती रुह, खून का फब्बारा और जीवन लीला के इस अध्याय का अंत..’ वर्तमान के सभी कल्पखानाओं में मनुष्य की इस वर्बरता, कूरता, निकृष्टता, स्वार्थता का नंगा नृत्य आसानी से द्रष्टिगोचर हो रहा है। यदि इस दृश्य के समक्ष एक माँसाहारी व्यक्ति को ले जाकर

उसे यह कल्पना करने को कहा जाये कि यहाँ जिस जीव को तुम्हारी ढाई इन्च की जिवा के स्वाद हेतु कल्पना किया जा रहा है, उसके स्थान पर तुम्हें स्थापित कर दिया जाये तो शायद वह व्यक्ति इस प्रक्रिया में गुजरने से पूर्व ही भगवान् का प्यारा हो जायेगा। वास्तव में अपने प्राण हर किसी को प्रिय होते हैं। तीन लोक के समस्त प्राणी सुख, शांति चाहते हैं। दुःखों से सभी दूर भागते हैं। परन्तु क्या कभी दूसरों को कष्ट, पीड़ा, दुःख पहुँचाकर कोई जीव स्वयं सुखी रह सकता है? क्या हिंसा और कूरता की नींव पर अहिंसा, सुख, शांति, समृद्धि का मकान टिक सकता है? दूसरों के प्राणों का अंत करके क्या कभी स्वयं का शरीर सुंदर, पौष्टिक बन सकता है? क्या सभ्यता, संस्कृति, संस्कारों की हत्या करके मानव सही अर्थों में विजयी घोषित हो सकता है? कदापि नहीं। यदि उक्त प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं तो फिर मनुष्य किस बात के अहंकार में डूबा है कि आज उसने विज्ञान, खगोल, चिकित्सा आदि पर विजय हासिल कर ली है! वह सभी प्राणियों में श्रेष्ठ, बलवान्, बुद्धिमान है। मनुष्य की इस उपलब्धि के दुरुपयोग के भयंकर दुष्परिणाम प्रत्यक्ष घटित हो रहे हैं, और इन दुष्परिणामों का प्रतिफल भविष्य में लंबे समय तक भोगना पड़े गं। भूकंप, अकाल, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चक्रवात, झंझावात, प्राकृतिक विभिन्न प्रकार की आपदायें/ विपदायें इन बूचड़खानों की बढ़ती संख्या के ही दुष्परिणाम हैं।

प्रो. मदनमोहन जी जैन (बजाजसाहब) ने बिस थ्योरी की चर्चा करते हुए नवीन प्रमाण प्रस्तुत किये हैं vlf signals, shock waves, Infrasonics Waves, Mechanics के आधार पर उन्होंने Bis techtains के आधारभूत सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। प्रो. बजाज साहब के अनुसार निरीह जीवों की हत्या से उत्सर्जित EP तरंगे Bis fields को उत्पन्न करती हैं। Bisfields और Bis strings के कारण ही T और S तरंगे निकलती हैं जिससे भू गर्भीय जल में रेडोन की Concentration दस गुना अधिक हो जाता है जिसके कारण भूकंप इत्यादि प्रकोप होते हैं। इस तथ्य की जापानी, चीनी आदि अध्ययनों ने भी पुष्टि की है।

प्रत्येक हज पर बकराइद के आसपास उनकी थ्योरी की गहरा जांचे

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हुई । बकराइद के लगभग एक सप्ताह के अंदर भूकंपों के समाचार मिलते रहे हैं । Bis theory हमें भूकंपों की गहराई, तीव्रता से मारे गये जीवों की संख्या आदि के बारे में सशक्तरूप से सूचना देती है । प्रो. बजाज साहब एवं उनके सहपाठियों का दढ़ विश्वास के साथ दावा है कि अहिंसा से भूकंप चक्रवात, झंझावात, ओजोन लेयर में छिद्र आदि को रोका जा सकता है । शाकाहार और अहिंसा ऐसे हथियार हैं जो विश्व की रक्षा कर सकते हैं ।

यदि हमें प्रकृति की सुरम्य वादियाँ, झूमते लहलाते वृक्ष, नवजीवन की प्रेरणा देती हुई लतायें, पक्षियों की मधुर चहचाहट, जलचरों के मनौहर कलरव और भोले पशुओं का स्नेह चाहिए तो यह आवश्यक है कि हम 'अहिंसा की प्रथम सीढ़ी शाकाहार' पर कदम रखें । यहाँ शाकाहार की परिभाषा से प्रयोजन अथवा बिना प्रयोजन माँस भक्षण का त्याग करना ही शाकाहार नहीं माना है बल्कि अपने शौक मनोरंजन को पूर्ण करने हेतु हिंसा नहीं करना, एवं हिंसात्मक सौन्दर्य प्रसाधन की सामग्री का उत्पादन विक्रय नहीं करना शाकाहार है । मेरे शब्दानुसार शाकाहार की परिभाषा निम्न प्रकार है :

'शाकाहार, मात्र शाक-आहार नहीं है, शाकाहार, मात्र एक दोस्ती या व्यवहार नहीं है, शाकाहार एक सभ्यता संस्कृति मात्र नहीं हैं, शाकाहार केवल प्रकृति का बरदान नहीं है । शाकाहार मात्र लेखन का विषय नहीं हैं, बल्कि शाकाहार है जीओ और जीने दो की विचारधारा । शाकाहार है करूणा, दंधा, स्नेह, ममता, संवेदना, सहिष्णुता, अहिंसा, सत्य, अनेकान्त । शाकाहार है पुष्प के मध्य सुरभि । शाकाहार है एक आत्मीयता, मानवीयता, नैतिकता, स्वाभिमान एक विजय, एक शक्ति । शाकाहार है एक सहज सरल, शुद्ध, सादगीपूर्ण जीवनशैली ।

आज इस शाकाहार की परिभाषा को स्वार्थी मानव ने बहुत ही सीमित/ संकीर्ण/ सूक्ष्म/ विकृतरूप दे दिया है और इसकी आड़ में अनेकों पाप, अपराध, अन्याय, अनीति, अत्याचार, भ्रष्टाचार, शोषण, मिलावट, धोखाघड़ी आदि उष्णकृत्य फल फूल रहे हैं ।

इस देश में प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख से भी अधिक गर्भपात कराये जाते हैं । शायद ही कोई ऐसा दिन गुजरा होगा जब समाचार पत्र पत्रिकाओं

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

में यह रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई हो कि अमुक कन्या की स्टोव फटने से, कुये में गिरने से, जहर खाने से, फाँसी के फंदे पर लटकने से, ससुराल पक्ष की तरफ से दहेज के लिए दिन रात प्रताड़ित करने पर तंग आकर कन्या ने खुदकशी न की हो । ये घटनायें निश्चितरूप से प्रतिदिन प्रकाशित होती ही हैं । आज व्यक्ति, व्यक्ति के अंदर, परिवार परिवार में, समाज, राष्ट्र, विश्व में बूचड़ खाने खुले हुए हैं । कहीं गर्भपात द्वारा हत्यायें हो रही हैं, तो कहीं दहेज के लिए कन्याओं की बलि चढ़ायी जा रही हैं तो कहीं अपने शौक मनोरंजन को पूरा करने के लिए मासूम पशुओं को कुर्बान होना पड़ रहा है तो कहीं जिव्हा लोलुपी दूसरों का माँस खाकर अपनी सन्तुष्टि कर रहे हैं तो कहीं खाद्य पदार्थों में नकली वस्तुओं की मिलावट करके आदमी अपने को सेठ साहूकार मान रहा है, तो कहीं सरकार माँस नियंत करके जनता के समक्ष दलील रखती है कि माँस नियंति से देश की आर्थिक स्थिति सुटूँड़ हो रही है, तो कहीं विज्ञापनों के माध्यम से जनता को भ्रमित करके उसकी नैतिक, धार्मिक आस्थाओं का, खानपान का, रहनसहन का, परम्पराओं का हनन किया जा रहा है । आखिर क्या हो गया है इस देश के देशवासियों को ? क्या होगा इस देश का ? जिस देश के लाखों साधु-साध्वी, संत, सन्यासी, अहिंसा, मैत्री, करूणा, दया, सेवा, परोपकार, क्षमा, संवेदना, सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय, बसुधैव कुटुम्बकम्, परस्परोपग्रह जीवानाम्, जीओ और जीने दो के दिव्य संदेशों का प्रचार-प्रसार करते हों उस देश की धरती पर ऐसी जीवहत्या का ताण्डव हो यह कितने दुःख, शोक, लज्जा, शर्म की बात है ? यह अन्याय कब कहाँ जाकर विराम लेगा यह विचारणीय प्रश्न है ?

महावीर के निर्वाण को अभी 2527 वर्ष ही हुए हैं अभी उनका शासनकाल 18  $\frac{1}{2}$  लंजार वर्ष तक जीवन्त रहेगा । इस प्रकार से इन बढ़ते अपराधों पर नियन्त्रण नहीं लगाया गया तो 18  $\frac{1}{2}$  हंजार वर्षों तक क्या स्थिति बनेगी यह विषय एक बहुत बड़ी चिंता का विषय है ?

बुरों में भी अच्छे होते हैं और अच्छों में भी बुरे होते हैं जैसे कि लंका में सभी रावण नहीं थे लंका में भी विभीषण जैसे न्यायी, सत्यप्रेमी, सज्जन थे और अयोध्या में भी मंथरा, कैकई जैसे झगड़ालू, ईर्ष्यालु, निन्दक थे । इस

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

प्रकार इस भारतभूमि पर पंचम काल के अंत तक कुछ ऐसे विशिष्ट दिव्यात्मा, पुण्यात्मा, ओजस्वी, तेजस्वी, अन्याय अनीति का विरोध करने वाले महापुरुष जीवन्त रहेंगे जो कि इन दुष्प्रवृत्तियों को नष्ट करने हेतु जी जान से प्रयासरत रहेंगे। किया हुआ सत्प्रयास कभी विफल नहीं जाता वह अवश्य ही फलदायी होता है। सत्य एवं न्याय की हमेशा विजय होती है यह निर्विवाद सत्य है।

मुझे पूर्ण आशा विश्वास है कि वह स्वर्णिम भविष्य नजदीक ही आयेगा कि जहाँ आज कल्लखाने हैं उन सब स्थानों पर परमात्मा के मंदिर होंगे। जहाँ निरीह पशुओं का करुण चीत्कार है वहाँ भगवान् के नाम का मधुर संगीत होगा। जहाँ खून की नदियाँ बह रही हैं वहाँ दूध, धी की नदियाँ बहेगी। छलछद्रम से भरी राजनीति की जगह न्याय, सत्य से परिपूर्ण धर्मनीति होगी। भ्रष्ट, स्वार्थी, धोखेबाज, गद्दार खलनेता, राजनेता, अभिनेताओं की जगह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य के आदर्श सद्वाक्यों को पढ़ाने, बताने वाले धार्मिक नेता होंगे।

मैं नोजवान युवा पीढ़ी से ये आशा रखती हूँ कि इन दुष्प्रवृत्तियों के खिलाफ व्यापक जन आन्दोलन करके एवं समग्र क्रांति के द्वारा इन हानिकारक कुप्रवृत्तियों को पूर्ण रूपेण बंद करने का मन, वचन, काय, कृत, कारित अनुमोदना द्वारा दृढ़ संकल्प ले। परिवार से लेकर प्रशासन तक को यह करके बता दें कि हम आदिनाथ महावीर के वंशज हैं इन अत्याचारों को सहन करने के लिए हमने जन्म नहीं लिया है बल्कि हमने अमूल्य मानव रूप को प्राप्त किया है तो इस अमूल्य रूप की कीमत हम सद्ये पारखी बनकर ही अदा करेंगे।

महावीर के शासनकाल को गौरव गरिमा के साथ जीवन्त रखेंगे। इसी आशा दृढ़संकल्प के साथ पूज्य कनकनंदीजी गुरुदेव ने इस कृति की रचना की है। पूज्य गुरुदेव ने विभिन्न जैन, जैनेतर, वैज्ञानिक प्रमाण, उदाहरण, गाथा, सूत्रों द्वारा यह सिद्ध किया है कि हिंसा से विश्व में सुख, शांति, समृद्धि, प्रगति विकास न हुआ और न ही आगे कभी होगा। संपूर्ण विश्व में सुख, शांति, समृद्धि, प्रगति, विकास हो ऐसी गुरुदेव की उदार, उदात्त, शुभ भावनाओं का मनाओं के साथ, गुरुदेव की इस कृति का सभी अवलोकन करके अहिंसा को स्व-पर के आचरण व्यवहार में क्रियान्वित करें।

\*\*\*\*\* 5 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

## हृदयोदगार

ऐ नर पिशाच ! निर्दोष पशु-पक्षियों की हत्या  
का मानवाधिकार कहाँ से प्राप्त किया ?

(संकीर्ण - कूरतापूर्ण मानवाधिकार)

“विन जाने ते दोष गुणन को कैसे तजिए गहिए ।”

अर्थात् जब तक दोष एवं गुणों का परिज्ञान नहीं होगा तब तक दोषों का त्याग तथा गुण-ग्रहण नहीं हो सकता है। इस दृष्टि से मानव समाज की समीक्षा/परीक्षा आवश्यक है। कुछ महामानवों की महानता के कारण मानव समाज को सब महान् मानते हैं जो कि असत्य-अतथ्यपूर्ण होने के साथ अनेक अनर्थों के जनक हैं। प्राकृतिक रूप से शारीरिक-संरचना, बौद्धिक क्षमता आदि कुछ विशेषताओं के कारण मनुष्य भले ही कुछ अन्य जीवों से भिन्न हो परन्तु उसकी दुष्टता, कूरता, स्वार्थनिष्ठा आदि दुर्गुण उसे श्रेष्ठ के बदले निकृष्ट, ज्येष्ठ के परिवर्तन में कनिष्ठ, महान् के बदले तुच्छ ही सिद्ध करते हैं। अन्य पशु-पक्षी तो पेट पोषण, आत्मसंरक्षण आदि अपरिहार्य कारणों से कुछ पाप करते हैं, परन्तु मनुष्य पेट से अधिक पेटी (संग्रह), आत्म संरक्षण से अधिक पर-भक्षण के लिए, आवश्यकता के अधिक अनावश्यक दुष्टतापूर्ण कार्य के लिए, परिशोधन से अधिक प्रतिशोध के लिए, बदलने (परिवर्तन, परिमार्जन, सुधार) से अधिक बदला लेने (विधवंश-विनाश) के लिए भयंकर, अधिक पाप करता है, इसीलिए ऐसे मानव को महान् मानना, बोलना, लिखना मानो उसके महान् पाप को पुण्य रूप से स्वीकार करना, पाप को ढँकना, उसकी दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करके उसे और भी अधिक पाप करने की प्रेरणा देना, कारण बनना है। कर्म सिद्धान्त के अनुसार - मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदन से पाप होता है। इसीलिए जो पाप करता है वह तो पापी है ही परन्तु जो उसका समर्थन, सहयोग भी मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदन से करता है वह भी पापी है।

विश्व में अन्य कोई भी जीव भले वह दुष्ट से दुष्ट, पशु, पक्षी, नारकी, देवता ही क्यों न हो वह मनुष्य के बराबर पापी नहीं है। मनुष्य अत्यन्त स्व-

\*\*\*\*\* 6 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

संकीर्ण स्वार्थ की दृष्टि से ही समस्त व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय तथा वैश्विक विषयों की तुलना करता है। मनुष्य का क्या अधिकार है कि प्रकृति में जो अन्य बनस्पति पशु, पक्षी आदि जीव हैं उसे अपने क्षुद्र स्वार्थों के लिए जीवित या मार करके प्रयोग करें ? क्या अन्य किसी पशु, पक्षीने मनुष्य के लिए ऐसा व्यवहार किया है ? कर रहा है ? यदि कोई ऐसा करेगा तो मनुष्य क्या उसको सहर्ष स्वीकार किया है ? या करेगा ? जो गाय भैंसादि पशु दूध, मूत्र, गोबर, श्रम, संतनादि के द्वारा मनुष्य की सेवा करते हैं उन्हें भी यह बर्बर, कृतज्ञ, भ्रष्ट बुद्धिवाला मनुष्य मारकर खा जाता है। ऐसा व्यवहार क्या कोई पशु, पक्षी, करता है ? इतनी मात्रा में योजनाबद्ध उपायों से मनुष्य को मारकर खाता है ? कोई पशु, पक्षी यदि जीवन यापन के लिए या आत्मरक्षा के लिए भी एक भी मनुष्य को घायल कर देता है तो मनुष्य उसकी तथा उसके अन्य सदस्यों की भी निर्मम हत्या कर देता है। मनुष्य को जितना सुखपूर्वक जीने का अधिकार है वैसा क्या इतर जीवों को नहीं हैं ? उसने ऐसा जीने का अधिकार कहाँ से प्राप्त किया है ? साथ ही दूसरें जीवों के जीने के अधिकार को छीनने का अधिकार कहाँ से प्राप्त किया ? कोई सरकार, नेता, राजा, पंथ, संप्रदाय, धार्मिक-ग्रंथ, न्याय, कानून, न्यायालय को भी अन्य जीवों को मारने का, सताने का अधिकार, लाइसेंस देने का अधिकार कहाँ से प्राप्त किया है ? यह अधिकार प्रकृति नहीं दे सकती है, क्योंकि प्रकृति के लिए हर जीव स्व अभिन्न अंगभूत/ स्वसंतान है। जिस प्रकार शरीर का हर अंग-उपांग स्वस्थ रहने से शरीर स्वस्थ रहता है उसी प्रकार प्रकृति के हर जड़-चेतनात्मक घटक स्वस्थ रहने से प्रकृति स्वस्थ रहती है। प्राणी हत्या से लेकर के प्रकृति के दोहन, शोषण, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, बाढ़ चक्रवाती तूफान आदि प्राकृतिक प्रकोपों द्वारा प्रकृति विरोध करती है। इसी प्रकार भगवान् भी ऐसे अधिकार नहीं दे सकते हैं क्योंकि भगवान् दयालु, समदर्शी, सर्वज्ञ, भेदभाव से रहित होते हैं। मनुष्य स्व स्वार्थ के लिए, स्व-सुरक्षा के लिए हर प्रकार की व्यवस्था करता है और कानून, नीति-नियम भी बना लेता है। मानव अधिकार में तो स्व अधिकार के लिए सब कुछ करता है लेकिन पशु-पक्षी आदि के अधिकारों को छीनता है। जो कानून, सरकार (प्रशासन) आदि अन्य पशु पक्षियों को मारने का अधिकार देते हैं क्या वे ऐसे कानून बना करके स्वयं को मारने की योजना बनाते हैं ? मनुष्यने अपनी संकीर्ण स्वार्थपरता एवं कुबुद्धि के कारण संविधान, कानून

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

से निश्चित किया है कि पशु, पक्षियों को वैथ रूप से बूचड़ खाने में मार सकते हैं। इस कानून के कारण निर्दोष परोपकारी, स्वस्थ, सबल कम वयस्क से लेकर वृद्ध, रुग्ण पशु-पक्षियों की जिनकी सेवा सुरक्षा की आवश्यता है, उनकी भी निर्मम हत्या बूचड़ खाने में की जाती है। क्या ऐसे कोई कानून मनुष्य के लिये बनाए हैं जिससे रुग्ण, वृद्ध, काम करने के अयोग्य मनुष्यों की हत्या सामृहिक रूप से बूचड़ खाने में की जावे ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? यदि मनुष्य के लिए यह अनैतिक, अविधेय है तो यह पशु-पक्षियों के लिए अनैतिक अविधेय क्यों नहीं है ? यह क्या मनुष्य की महानता सिद्ध करता है ? या मनुष्य की संकीर्णता, कूरता, बर्बरता को सिद्ध करता है ? इसीप्रकार जो व्यक्ति, जो जाति, जो धर्म, जो राष्ट्र, जो संगठन शक्तिशाली होता है वह भी अपनी संकीर्णता के कारण दूसरे व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक के लिए ऐसी ही संकीर्णता एवं बर्बरता-पूर्ण नीति, गति विधियाँ अपनाते हैं। कहा भी है ‘लोकः प्रायः स्वार्थ परायणम्’ अर्थात् समस्त संचार स्वार्थ परायण है। मानव सब कमजोरियों को, संकीर्णताओं एवं कूरताओं को त्याग करके भलाईयों को, उदारताओं को, महानताओं को अपनाये जिससे स्वकल्याण के साथ-2 पर कल्याण एवं विश्व कल्याण संभव हो सके। व्यक्ति से लेकर समाज, विश्व में शान्ति, सुख, समृद्धि का साम्राज्य केवल नैतिक, आध्यात्मिक गुणों की स्थापना से ही संभव है। यही मानव की मानवता एवं महानता है, समाज की व्यवस्था है, राष्ट्र की नीति है, कानून का प्राण है, विज्ञान की सच्चाई है, धर्म का हृदय है। इसके बिना न तो मानव की मानवता/ महानता, समाज की व्यवस्था, राष्ट्र की नीति, संविधान, धर्म का प्राण एवं विश्व शांति की व्यवस्था है। इसके बिना समाज-राष्ट्र, कानून, संविधान, विज्ञान, धर्म आदि सब हितकारी के बदले अहितकारी, विकास के बदले विध्वंसकारी सिद्ध होंगे। अतः कहा भी है –

कुबोधरागादिविचेष्टितैः फलं

त्वयापि भूयो जननादिलक्षणम् ।

प्रतीहि भव्य प्रतिलोम वृत्तिभिः ।

ध्रुवं फलं प्राप्स्यसि तद्विलक्षणम् ॥

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हे भव्य ! तू बार - 2 मिथ्या ज्ञान, राग-द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जन्म मरणादि फल प्राप्त किया है। इसके विरुद्ध प्रवृत्तियों सम्यक्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों - के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा ऐसा निश्चय कर।

दया दमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुण प्रयत्नवान् ।

नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ॥

(107) आत्मानुशासन पृ. 101

हे भव्य ! तू प्रयत्न करके सरल भाव से इंद्रिय दमन, दान और ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा। वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त करता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

मैंने इस कृति में समस्त मानव को लक्ष्य करके लिखा है इसमें किसी जाति, पंथ, धर्म, राष्ट्र के पक्ष-विपक्ष में नहीं लिखा है। मेरी पवित्र भावना है कि मानव स्व की महानता, क्षमता, शक्ति, उपलब्धियों को समझे एवं स्व-पर-विश्व कल्याण में लगाये। क्योंकि शक्ति के सदुपयोग से विकास होता है एवं दुरुपयोग से विनाश है। बड़ी से बड़ी शक्ति के सदुपयोग से विकास होता है एवं दुरुपयोग से बड़े से बड़ा विनाश होता है। यह एक विडम्बना है कि व्यक्ति उपलब्धियों का सदुपयोग कम करता है एवं दुरुपयोग अधिक करता है उपलब्धि के बिना जो हानि होती है उपलब्धि का दुरुपयोग करने से उससे भी बड़ी हानि होती है। इस वैज्ञानिक युग में बौद्धिक एवं भौतिक विकास के साथ साथ भावात्मक - आध्यात्मिक विकास की आवश्यकता है। इसके बिना विज्ञान के अधिक विकास से अधिक विनाश होने की संभावना है। क्योंकि एक व्यक्ति लाठी के माध्यम से जितना दूसरों को कष्ट दे सकता है, विध्वंश कर सकता है, मार सकता है ऐटमबम से उसे लाखों-करोड़ों गुना विध्वंश करना संभव है। खेद है ! मानव वैज्ञानिक शोध-बोध, उपकरणों के माध्यम से कण से लेकर ब्रह्माण्ड तक, पृथ्वी से लेकर दूरस्थ आकाश गंगाओं का शोध-बोध कर रहा है तथापि स्वनिहित दुष्प्रवृत्तियों का शोध-बोध, परिमार्जन

\*\*\*\*\*

9

\*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*  
नहीं करता है।

जब व्यक्ति बाह्य विश्व के साथ-साथ अंतरंग विश्व का शोध-बोध, परिमार्जन करेगा तभी सच्चे स्थायी सुख को प्राप्त कर सकता है।

इस ग्रन्थ के द्रव्यदाता/ज्ञानदानी प्रद्युम्न एस. झवेरी तथा सपरिवार को मेरा शुभाशीर्वाद ।

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देखने करके मुँह पर लगे काले कलंक को मिटाता है उसी प्रकार मेरी कृति को पढ़कर अपनी दुष्प्रवृत्तियों को दूर करें एवं पवित्र, महान् बने ऐसी शुभ महती भावना के साथ।

आ. कनकनंदी

गींगला (उदयपुर)

20/9/2001



आयड़ (उदयपुरमें आयोजित उपाध्याय पदबी संस्कार का एक दृश्य (पादप्रक्षालन)

\*\*\*\*\*

10

\*\*\*\*\*

## पुरोवाक्

प्रत्येक जीव सुख चाहता है एवं सुख प्राप्त करने के लिए विभिन्न आवलम्बन लेता है। जब वह इन्द्रिय सम्बन्धी भौतिक सुखों से शाश्वतिक सुख प्राप्त नहीं कर पाता तब वह शाश्वतिक सुख के लिए धर्म का आवलम्बन लेता है। जब धर्म का आवलम्बन लेता है तब धर्म की महाविभूतियों की सेवा, पूजा, अर्चना करने लगता है वह उन महाविभूतियों से इतना प्रभावित हो जाता है कि उन्हें स्वयं की अच्छी से अच्छी चीज़, सम्पत्ति आदि अर्पण करना चाहता है। भक्ति-प्रधान भक्त (सेवक) अपने इष्ट देवों को अपना सर्वस्व समर्पण करके स्वयं की भक्ति प्रगट करता है। इतना ही नहीं अपना सुख-दुख भी इष्ट देव को समर्पित करके स्वयं निर्द्वन्द्व हो जाता है। वह भक्ति-योग की पराकाष्ठा स्थिति है। परन्तु जो इस स्थिति तक नहीं पहुँचा है वह अपनी इष्ट, प्रिय-वस्तुओं को अपने इष्ट देव के सामने समर्पण करके अपनी भक्ति प्रकट करता है। दोनों प्रकार की भक्ति या पूजा का मुख्य उद्देश्य भगवान के उत्तम गुण को प्राप्त करना एवम् सांसारिक दुःखों से दूर होना है। इसलिए वह उसकी पूजा करता है जिससे अपनी अभिप्रेत वस्तु प्राप्त हो। जैसे कि जैन-पूर्वाचार्यों ने कहा भी है—

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।  
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः॥

(इष्टोपदेश) (231)

आत्मज्ञान से शून्य अज्ञानी की सेवा—उपासना अज्ञान को देती है और ज्ञानियों की सेवा उपासना ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के पास जो कुछ होता है उसी को वह देता है।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।  
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी॥१७॥

समाधितन्त्र।

अपने आत्मा से भिन्न अहन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके सामने परमात्मा बन जाता है। जैसे— दीपक से भिन्न बत्ती दीपक

की उपासना करके यानी— साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन यदूयं ध्यायेतमात्मानमात्मवित्।

येन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा।

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है वह उस स्वरूप हो जाता है। जैसे-स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से विभिन्न वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।

अर्हत्यानाविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्॥

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूप हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि जिस प्रणाली से यह जीव परमात्मा का पूजन, यजन, भक्ति, यज्ञ करके स्वयं भगवान स्वरूप बन जाता है उस प्रणाली को यज्ञ कहते हैं और जो ऐसे महापुरुष इस पद्धति के माध्यम से स्वयं भगवान बनने के लिये पुरुषार्थ करता है उसको याज्ञिक (यजमान) कहते हैं। जैसे कि उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

सुसंवुडो पंचहिं संवरेहिं इह जीवियं अणवकं खमाणो।

वोसटृटकाओसुइचत्तदेहोमहाजयंजयईजन्नसिट्ठं॥(42)॥

(बाहवाँ अध्ययनः हरिकेशीय) पृ. (204)

जो पाँच संवरों से पूर्णतया संवृत होते हैं, इस मनुष्य—जन्म में (असंयमी) जीवन की आकांक्षा नहीं करते, जो काया (शरीर के प्रति ममत्व या आसक्ति) का व्युत्सर्ग (परित्याग) करते हैं, जो शुचि (पवित्र) हैं, जो विदेह (देह—भावरहित) हैं, वे महाजय रूप श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं।

के ते जोई? केव ते जोइटाणे? का ते सुया? किं व ते कारिसंग?

एहा य ते कयरा सन्ति? भिक्खू कयरेण होमेण हुणासि जोइं? (43)

(रुद्रदेव—) हे मिथु! तुम्हारी ज्योति (अग्नि) कौन—सी है? तुम्हारा ज्योति स्थान कौन सा है? तुम्हारी (यी आदि की आहुति डालने की) कड़धियाँ कौन—सी हैं? अग्नि को उद्दीप्त करने वाले तुम्हारे करीषांग (कण्डे) कौन—से हैं? अग्नि को जलाने वाले तुम्हारे इन्धन क्या हैं? एवं शान्तिपाठ कौन—से हैं? तथा किस होम हवन विधि से आप ज्योति को (आहुति द्वारा) तृप्त (हुत) करते हैं?

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

तवो जोई जीवो जोइटाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंगं।  
कर्म एहासंजमजोग सन्तीहोमं हुणामी इसिणं पसत्वं॥४४॥

(मुनि-) बाह्याभ्यन्तरभेद वाली तपश्चर्या ज्योति है, जीव (आत्मा) ज्योतिस्थान (अग्निकृष्ण) है, योग मन, वचन और काय की शुभ प्रवृत्तियाँ (धी आदि डालने की) कुड़छियाँ हैं, शरीर (शरीर के अवयव) अग्नि प्रदीप्त करने के कण्डे हैं; कर्म इन्धन हैं, संयम के योग (प्रवृत्तियाँ) शान्तिपाठ हैं। ऐसा ऋषियों के लिये प्रशस्त जीवोपधातरहित (होने से विवेकी मुनियों द्वारा प्रशस्ति) होम (होम प्रधान यज्ञ) मैं करता हूँ।

वैदिक परम्परा के प्राचीन साहित्य आरण्यक ग्रन्थ में इसप्रकार के यज्ञों का वर्णन करते हुये निम्न प्रकार कहा है—

सत्यं तपश्च संतोषः, क्षमा चारित्रमार्जवम्।

श्रद्धा धृतिरहिंसा च, संवरश्च तथा परः॥

- |            |                          |
|------------|--------------------------|
| 1. सत्य    | 2. तप                    |
| 3. संतोष   | 4. क्षमा                 |
| 5. चारित्र | 6. आर्जव (मृदुता, सरलता) |
| 7. श्रद्धा | 8. धृति (धैर्य),         |
| 9. अहिंसा  | 10. संवर।                |

इस प्रकार यज्ञ के दस भेद हो जाते हैं।

इसी ग्रन्थ में अग्निहोत्र का वर्णन करते हुये कहा है—

कर्मेन्धनं समाश्रित्य, दृढा सद्भावनाहुतिः।

धर्मध्यानाग्निना कार्या, दीक्षितेनाऽग्निकारिका॥

कर्म रूपी इन्धन आश्रय करके दृढ़ सद्भावना रूपी आहुति तथा धर्म-ध्यान रूपी अग्नि को करना चाहिये। अर्थात् यजमान स्वः पूर्वोपार्जित कर्म को जलाने के लिये व भस्म करने के लिये धर्म-ध्यान रूपी अग्नि में सद्भावना रूपी आहुति के द्वारा अग्निहोत्र करता है।

उपनिषद् में भी कहा है—अस्य शारीरज्ञस्य यूपरशनाऽशोभित्स्यात्मायजमानः बुद्धि पत्नीवेद म ऋत्विजः अहंकारोऽधर्यु चित्त होता प्राणो ब्रह्मणणाच्छसी अपानः पति-प्रस्थान व्यानः प्रस्तोता उदान उद्रगाता समानो मैत्रा—वरूणः शरीर वेदि... सर्वाण्यस्मिन् देवता शरीर धिमाहितः।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इस शरीर यज्ञ का आत्मा यजमान है, बुद्धि पत्नी है, वेद ही महाऋत्विज है, अहंकार तत्त्व ही अधर्यु है, चित्त ही होता है, प्राण ब्राह्मणच्छसी है, अपान प्रति-प्रस्थाता है, व्यान प्रस्तोता, उदार उद्रगाता, समान मैत्रावरूण, शरीर वेदि नाक,

अन्त, वेदी, शिर द्रोण कलश पैर, रथ, दाहिना हाथ सुवा, बाँया हाथ धृतपात्र, कान आधार प्राणियाँ प्रोक्षणीपात्र, आँख आज्यभाग, गर्दन धारा तन्मात्राएं (पाँच) पोता, पंच महाभूत सदस्य, गुण प्रयान अनुयाज, जीभ इडा, दाँत ओष्ठ सूक्तवाक् तालु सयोवकि स्मृति दया शान्ति अहिंसा, पत्नी संयान, ऊँकार खम्भा, आशा रशना, मन रथ, काम ही पशु, काल ही कुशाएँ, इन्द्रियाँ यज्ञपत्र, कर्मन्द्रियाँ हवि, अहिंसा इष्टकायें, त्याग ही दक्षिण, मृत्यु ही अवभृष्ट स्नान है। अर्थात् उपर्युक्त वस्तुओं में तत्त्व वस्तु की स्थिति समझ उन्हों के अनुसार क्रियायें भी समझनी चाहिए तभी यह यज्ञ पूरा फलदायक होता है। मोक्ष की प्राप्ति का साधन होता है तथा सभी देवता इस शरीर में समाहित होते हैं। (प्राणग्निहोत्रोपनिषद् पृ. 231)

जैनाचार्य ने यज्ञ के पर्यायवाचक शब्द, अर्थ, उद्देश्य, प्रणासी, भेद-प्रभेद, फलादि का वर्णन करते हुए कहा है कि—

वर्तते यज्ञशब्दश्च दानदेवर्षिपूजयोः। (192)

उत्तरपु. पृ. 257

यागो यज्ञः ऋतुः पूजा सपर्येज्याहवरो मखः।

मह इत्यपि पर्यायवचनान्यर्चनाविधेः। (193)

यज्ञशब्दाभिधेयोरुपदानपूजास्वरूपकात्।

धर्मार्त्पुण्यं समावर्ज्य तत्पाकद्विविजेश्वराः। (194)

शतऋतुः शतमखः शताध्वर इति श्रुताः।

प्रादुर्भूताः प्रसिद्धास्ते लोकेषु समयेषु च। (195)

यज्ञ शब्द, दान देना तथा देव और ऋषियों की पूजा करने के अर्थ में आता है। याग, यज्ञ, क्रतुं, पूजा, सर्पया, इज्या, अध्वर, मख और मह ये सब पूजा विधि के पर्यायवाचक शब्द हैं। यज्ञ शब्द का वाच्यार्थ जो बहुत भारी दान देना और पूजा करना है। तत्स्वरूप धर्म से ही लोग पुण्य का संचय करते हैं और उसी के परिपाक से देवेन्द्र होते हैं। इसीलिए ही लोक और शास्त्रों में इन्द्र के शतऋतु, शतमुख और शताध्वर आदि नाम प्रसिद्ध हुए हैं तथा सब जगह सुनाई देते हैं।

\*\*\*\*\* 14 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

यदि यज्ञ शब्द का अर्थ हिंसा करना ही होता है तो इसके करने वाले की नरक गति होनी चाहिए। यदि ऐसा हिंसक भी स्वर्ग चला जाता है तो फिर जो हिंसा नहीं करते हैं उनकी अधोगति होना चाहिए – उन्हें नरक जाना चाहिए। कदाचित् आपका यह अभिप्राय हो कि यज्ञ में जिसकी हिंसा की जाती है उसके शरीर का दान किया जाता है अर्थात् सबको वितरण किया जाता है और उसे मारकर देवों की पूजा की जाती है। इस तरह यज्ञ शब्द का अर्थ जो दान देना और पूजा करना है उसकी सार्थकता हो जाती है? तो आपका यह अभिप्राय ठीक नहीं है क्योंकि इस तरह दान और पूजा का जो अर्थ आपने किया है वह आपके ही घर मान्य होगा, सर्वत्र नहीं। यदि यज्ञ शब्द का अर्थ हिंसा ही है तो फिर धातुपाठ में जहाँ धातुओं के अर्थ बतलाते हैं वहाँ यज्ञ धातु का अर्थ हिंसा क्यों नहीं बतलाया? वहाँ तो मात्र ‘‘यज्ञ देव पूजा संगतिकरणदानेषु’’ अर्थात् यज्ञ धातु, देवपूजा, संगतिकरण और दान देना इतने अर्थों में आती है, यही बतलाता है इसलिए यज्ञ शब्द का अर्थ हिंसा करना कभी नहीं हो सकता। कदाचित् आप यह कहें कि यदि हिंसा करना यज्ञ शब्द का अर्थ नहीं है तो आर्य पुरुष, प्राणी हिंसा से भरा हुआ यज्ञ क्यों करते हैं? तो आपका यह कहना अशिक्षित अथवा मूर्ख का लक्षण है – चिन्ह है। क्योंकि आर्य और अनार्य के भेद से यज्ञ दो प्रकार का माना जाता है। इस कर्मभूमि रूपी जगत् के आदि में होने वाले परमब्रह्म श्री वृषभदेव तीर्थकर के द्वारा कहे हुए वेद में जिसमें कि जीवादि छह द्रव्यों के भेद का यथार्थ उपदेश दिया गया है क्रोधाग्नि, कामाग्नि और उदराग्नि ये तीन अग्नियाँ बतलाई गई हैं। इनमें क्षमा, वैराग्य और अनशन की आहुतियाँ देने वाले जो ऋषि, यति, मुनि और अनगार रूपी श्रेष्ठ द्विज वन में निवास करते हैं वे आत्मयज्ञ कर इष्ट अर्थ को देने वाली अष्टम पृथिवी-मोक्ष स्थान को प्राप्त होते हैं। इसके सिवाय तीर्थकर, गणधर तथा अन्य केवलियों के उत्तम शरीर के संस्कार से पूज्य एवं अग्निकुमार इन्द्र के मुकुट से उत्पन्न हुई तीन अग्नियाँ हैं उनमें अत्यन्त भक्त तथा दान आदि उत्तमोत्तम क्रियाओं को करने वाले तपस्वी, गृहस्थ, परमात्म पद को प्राप्त हुए अपने पिता तथा प्रपितामह को उद्देश्यकर ऋषि, प्रणीत वेद में कहे मन्त्रों का उच्चारण करते हुए जो अक्षत गंध फल आदि के द्वारा आहुति दी जाती है वह दूसरा कार्य यज्ञ कहलाता है। जो निरन्तर यह यज्ञ करते

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

है वे इन्द्र सामानिक आदि माननीय पदों पर अधिष्ठित होकर लोकान्तिक नामक देव ब्राह्मण होते हैं और अन्त में समस्त पापों को नष्टकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। दूसरा श्रुतज्ञानरूपी वेद सामान्य की अपेक्षा सदा विद्यमान रहता है। उसके द्रव्य, क्षेत्र आदि के भेद से अथवा तीर्थकरों के पंच कल्याणों के भेद से अनेक भेद हैं। उन सबके समय जो श्री जिनेन्द्रदेव का यज्ञ अर्थात् पूजन करते हैं वे पुण्य का संचय करते हैं और उसका फल भोगकर क्रम-क्रम से सिद्ध अवस्था-मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ऋषियों ने यह यज्ञ मुनि और गृहस्थ के आश्रम से दो प्रकार का निरूपण किया है। इसमें से पहला मोक्ष का साक्षात् कारण है और दूसरा परम्परा से मोक्ष का कारण है। इस प्रकार यह देवयज्ञ की विधि परम्परा से चली आई है, यही दोनों लोकों का हित करने वाली है और यही निरन्तर विद्यमान रहती है किन्तु श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थकर के तीर्थ में सगर राजा से द्वेष रखने वाला एक महाकाल नाम का असुर हुआ। उसी अज्ञानी ने इस हिंसा यज्ञ का उपदेश दिया है।

जब राम का पचपन और लक्ष्मण का पचास वर्ष प्रमाण, अत्यंत श्रेष्ठ ऐश्वर्य से भरा हुआ कुमारकाल व्यतीत हो गया तब इसी भरत क्षेत्र की अयोध्या नगरी में एक सगर नामक राजा हुआ था। वह सगर तब हुआ जब कि प्रथम चक्रवर्ती भरत महाराज के बाद इक्ष्वाकुवंश के शिरोमणि असंख्यात राजा हो चुके थे और उनके बाद जब हरिषेण महाराज नामक दसवां चक्रवर्ती मरकर सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हो गया था तब उसके बाद जब एक हजार वर्ष प्रमाण काल व्यतीत हो चुका था। इस प्रकार काल व्यतीत हो चुकने पर सगर राजा हुए थे। वह अखण्ड राष्ट्र का स्वामी था, तथा बड़ा ही क्रोधी था। एक बार उसने मुलसा के स्वयम्बर में आये हुए एवं राजाओं के बीच में बैठे हुए मधुपिंगल नामक श्रेष्ठ राजकुमार को ‘‘यह दुष्ट लक्षणों से युक्त है’’ ऐसा कहकर सभा भूमि से निकाल दिया। राजा मधुपिंगल सगर राजा के साथ वैर बांधकर लजाता हुआ स्वयम्बर मण्डप से बाहर निकल पड़ा। अन्त में संयम धारण कर वह महाकाल नाम का असुर हुआ। वह असुर राजा सगर के वंश को निर्मूल करने में तत्पर था। वह ब्राह्मण का वेश रखकर राजा सगर के पास पहुँचा और कहने लगा कि तू लक्ष्मी की वृद्धि के लिए, शत्रुओं का उच्छेद करने के लिए अथर्ववेद में कहा हुआ प्राणियों की हिंसा करने वाला यज्ञ कर। इस

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

प्रकार पाप से नहीं डरनेवाला उस महाकाल नामक व्यन्तर ने उस दुर्बुद्धि राजा को मोहित कर लिया वह राजा भी उसके कहे अनुसार यज्ञ करके पापियों की भूमि अर्थात् नरक में प्रविष्ट हुआ । इस प्रकार कुमार्ग में प्रवृत्ति करने से इस राजा का सब कुल नष्ट हो गया । (पृ. 255)

अन्यत्र कहा भी है ।

सुख्यतिथे उज्जो स्वीरकदंवृत्ति सद्ब्र सम्पतो ।  
सीरो तस्य य छुट्टो पुत्तोविय पव्वओ वक्को ।  
विणरीयमयं किच्चा विणसियं सत्यं संजयं लोए ।  
तत्तो पत्ता सध्वे सत्तम णरयं महाघोरं ।

(दर्शनसार भाव सं. पृ. 39)

भगवान मुनिसुव्रत नाथ के समय में एक क्षीरकदंब नाम के उपाध्याय शुद्ध सम्यक्त्वी थे । उसका पुत्र पर्वत और उसका शिष्य वसु दोनों ही कुटिल परिणामी थे । इन दोनों ने विपरीत मिथ्यात्व की कल्पना की तथा लोगों के समस्त संयम का नाश किया था इसलिए वे दोनों मरकर महाघोर साँतवे नरक में उत्पन्न हुए थे ।

महाभारत में व्यासदेव ने कहा भी है —

हिंसात्मक यज्ञ का निर्णय देने का फल

श्रुयते हि पुरा कल्पे नृणो ब्रीहिमयः पशुः ।  
येनायजन्त यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ।

(49) पृ. 5859) खण्ड VI

सुना है, पूर्वकाल में मनुष्यों के यज्ञ में पुरोडाश आदि के रूप में अन्नमय पशु का ही उपयोग होता था । पुण्यलोक की प्राप्ति के साथनों में लगे रहनेवाले याज्ञिक पुरुष उन अन्न के द्वारा ही यज्ञ करते थे ।

ऋषिभिः संशयं पृष्टो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।

अभक्ष्यमपि मांषं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो । (50)

प्रभो ! प्राचीन काल में ऋषियों ने चेदिराज वसु से अपना संदेह पूछा था । उस समय वसु ने मांस को भी जो कि सर्वथा अभक्ष्य है, उसे भक्ष्य बता दिया ।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

आकाशादवनि प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः ।

एतदेव पुनश्चोकत्वा विवेश धरणीतत्त्वम् । (51)

उस समय आकाशाचारी राजा वसु अनुचित निर्णय देने के कारण आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े । तदनन्तर पृथ्वी पर भी फिर यही निर्णय देने के कारण वे पाताल में समा गये ।

प्राचीन जैन, बौद्ध, हिन्दू साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अति प्राचीन काल में धर्म के नाम पर यज्ञ में पशु—बालि, नर—बलि आदि कुप्रथायें प्रचलित नहीं थी । परन्तु कालक्रम से भाव की दूषित प्रवृत्ति के कारण जैन धर्म के अनुसार बीसवें मुनि सुव्रतनाथ जीतीर्थकर के तीर्थ काल में तथा हिन्दू धर्म के अनुसार द्वापर युग में पर्वत नामक ब्राह्मण, वसु नामक राजा एवं महाकाल नामक असुर के माध्यम से हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ हुआ । प्रायः हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ 11,84,000 वर्ष पहले हुआ था । इसके पहले वेद में या भारतीय धार्मिक साहित्य में कहीं भी यज्ञ में हिंसा का वर्णन नहीं पाया जाता है । परन्तु प्राचीन साहित्य में अहिंसामय यज्ञ का यत्र—तत्र वर्णन पाया जाता है । इसके कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत कर रहा हूँ —

सयं पुरुषमालभन्त सकिं पुरुषोऽभवद्यावशं च गां च तौ गौरश्वगवयश्चाभवतां यमिमालभन्त । स उष्ट्रोऽभवद्यमजमालभन्त स शरभोऽभवत्समादेतेषां पशूनां नाशि व्यमपक्रांतमेधा हैते पशवः सर्वेषां वा एष पशुनां मेधौ यद्भवीहियवौ ॥

(यजर्वेद ब्राह्मण)

जिस पुरुष ने यज्ञ में हिंसा की, क्या वह पुरुष हुआ ? जिस गौ, घोड़ा, बकरी, उष्ट्र आदि को मारा क्या वे, वे ही रहे ? क्या बकरा कभी बलि होकर वन्यमृग भी हुआ (अर्थात् इन पूर्वोक्त जीवों की हिंसा करने से कोई लाभ अथवा फल विशेष नहीं होता) । अतएव इन पशुओं का वध नहीं करना चाहिये । ये बेचारे अबोध हैं । अतएव सब पशुओं के वध के स्थान पर, ब्रीही (धान) तथा जौ से कार्य लेना चाहिये ॥ (जीव दया दर्पण पृ. 4)

अश्वं वै राष्ट्रम् ॥

गौररत्न गौरै पृथ्वी ।

नरमेधः (अतिथियज्ञ)

साप्तवार्षिकाः ब्रीहाः अजाः प्रोच्यन्ते । (शतपथ ब्राह्मण)

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

अश्व नाम ईश्वर का है तथा गौ शब्द का अर्थ रत्न, गौ और पृथ्वी है। नरमेध, अतिथि यज्ञ को कहते हैं सात वर्ष के पुराने धानों को अज कहते हैं।

(अश्वमेधः) न खः अश्वः अश्वे परमात्मनि मेधा यस्मिन् कर्मणि सः अश्वमेधः ।

(गोमेधः) गौरिन्द्रिय तासु मेधा यस्मिन् कर्मणि स गोमेधः ।

(नरमेधः) नरः माचासबलपरमात्मातस्मिन्मेधायस्मिन् कर्मणिसः नरमेधः

(अजमेधः) न जायते इति अजः तस्मिन्मेधा यस्मिन्कर्मणि स अजमेधः ।

(साक्षी व्याकरणानि)

1. अश्व नाम परमात्मा का है। उसमें बुद्धि की धारणा जिस यज्ञ में की जाये वहीं 'अश्वमेध' कहलाता है।

2. गौ नाम इन्द्रियों का है उनका दमन जिस यज्ञ में किया जाय वह 'गोमेध' है।

3. 'नरमेध' अतिथि यज्ञ को कहता है।

4. सात वर्ष के पुराने धान 'अज' कहलाते हैं। उन धानों की आहुति देना 'अजमेध' हैं, बकरा काटना नहीं।

भो भो प्रजापते राजन् । पशून्यश्य त्वयाधरे ।

संज्ञापितान् जीवसंधान्निर्धृणोन सहस्राशः ॥

एते त्वां संप्रतीक्षांते स्मरन्तो वैशसं तव ।

संपरे तमयः कूटैश्छन्दन्त्युत्थिमन्यवः ॥

द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्टा भूतानि विभ्यति ।

एष मा करुणो हन्यादतज्जो ह्यसुतृष्णुवम् ॥

(श्रीमद् भागवत)

हे प्रजा के स्वामी राजन्। तुमने निर्दय होकर जिन सहस्रों पशुओं का यज्ञों में वध किया उन्हें देखो। तुम्हारी कूरता को स्मरण कर यह वाट जोह है। यहाँ आने पर क्रोध से फुँके हुये, तुम्हें लोहे के मूसलों से कूटेंगे। यहाँ पर अन्य प्राणी यज्ञों को प्राणियों के अतिरिक्त अन्य यवादि धान्य द्रव्यों से सिन्दू किया जाता देखकर भयभीत होते हैं। देखो! अब प्राणों की तृप्त करने की इच्छा रखकर कभी, इन बातों को भूलते हुये किसी को न मारना ॥

\*\*\*\*\* 19 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपोदानानि चानध ।

जीवाभ्यप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि ॥

(भगवत् 3 संक्ष, 7 अध्याय)

सब वेद, यज्ञ, तप और दानों को लाओ। तब भी हे अकलंक। वे सब मिलकर अहिंसा की एक कला के भी बराबर नहीं होते ॥

तस्य तेनानुभावेन मृगाहिं साऽऽत्मनस्तदा ।

तपो महत्समुच्छिन्नं तस्माद्भू हिंसा न यज्ञिया ॥

अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाधर्मस्तथा हितः ।

सत्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि नो धर्मः सत्यवादिनाम् ॥

(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्ष, अधिकार अ. 273)

तब उस मृग की हिंसा करने वाले का, उस प्रभाव से, महातप निर्रथक हो गया। अतएव हिंसा यज्ञ में नहीं होनी चाहिये। मैं तुमसे सत्य कहूँगा। सत्य बोलने वालों का सत्यधर्म कुछ भी धर्म नहीं। अहिंसा ही बढ़िया धर्म है, वही हित है ॥

यदि प्राणिवधो स्वर्गश्च खलु जायते ।

संसारभाजकानां तु कुतः श्वभ्रो विधास्यते ॥ (6) ॥

(महाभारत शान्तिपर्व)

जबकि प्राणि-वध से धर्म एवं स्वर्ग मिलता है, तब संसारी पुरुष के लिये क्यों नरक प्राप्त होगा?

ध्रुवं प्राणिवधो यजे नास्ति यज्ञस्त्वहिंसकः ।

ततोऽहिंसात्मकः कार्यः सदा यज्ञो युधिष्ठिरः ॥ (7) ॥

हे युधिष्ठिर! प्राणी-हिंसा, निसन्देह यज्ञ में नहीं होता। यज्ञ तो हिंसा रहित होता है। इस कारण सदा हिंसा-रहित यज्ञ ही करना उचित है।

इन्द्रियाणि पशून् कृत्वा वेदों कृत्वा तपोमयीम् ।

अहिंसामाहुतिं कृत्वा आत्मज्ञं यजाम्यहम् ॥ (8) ॥

देख! मैं तो, इन्द्रियों को पशु बनाकर, तपस्त्र वेदों में, अहिंसा की आहुति डालकर - आत्मिक यज्ञ किया करता हूँ।

ध्यानाग्नौ जीवकुं डस्ये दममारुतदीपिते ।

असत्कर्मसमित्क्षेपे अग्निहोत्रं कुरुत्तमम् ॥ (9) ॥

\*\*\*\*\* 20 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

जीवरूप कुण्ड में जगी हुई ध्यान की अग्नि में, जो कि मनोदमन के पाप से झपकी जा रही हो और जिसमें असत् कर्म की समिधायें जलाई जा रही हों, ऐसे परमोत्तम यज्ञ को कर !

यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।  
यथैवं गम्यते स्वर्गं नरकं केन गम्यते ॥ 10 ॥

बलि-पशु के बांधने के खूटे को तोड़कर, पशुओं को मारकर, खून खच्चर मचाकर, यदि कोई स्वर्ग चला जायगा तो फिर नरक कौन जायेगा ?

उद्यतं शस्त्रमालोक्य विषादं यांति चिह्नाः ।

जीवाः कंपन्ति संत्रस्ता नास्ति मृत्युसमं भयम् ॥ 16 ॥

शर्व को तुला हुआ देखकर जीव घबराने लगते हैं । डर से कांपने लगते हैं, सच है – मृत्यु से बढ़कर भय नहीं ।

कण्टके नापि विद्धस्य महती वेदना भवेत् ।  
चक्रकुं तासियष्ट्यादैः मार्यमाणस्य किं पुनः ॥ 17 ॥

कांटा चुभने से भी जब अत्यन्त कष्ट होता है – तब चर्खा, भाले, तलवार और दण्डों से मारे जाने वाले पशु के कष्ट का क्या वर्णन हो सकता है ?

दीयते मार्यमाणस्य कोटिजीवितमेव च ।

धनकोटिं परित्यज्य जीवो जीवितुमिच्छति ॥ 18 ॥

मारे जाते हुए पशु के लिए तो उसके करोड़ों जीवन ही समाप्त हो चुकते हैं । करोड़ों रुपया छोड़कर जीव तो अपना जीवन ही चाहता है ।

यो यत्र जायते जन्तुः स तत्र रमते चिरम् ।

अतः सर्वेषु जीवेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥ 19 ॥

जो जीव जिस योनि में जन्म लेता है वह उसी में प्रसन्न रहता है । अतएव सज्जन लोग सब जीवों पर दया करते हैं ।

अमेध्यमध्ये कीतस्य सुरेन्द्रस्य सुरात्म्ये ।

समाना जीविताकांक्षा तुल्यं मृत्युभयं दयोः ॥ 20 ॥

विष्ठा में पड़े हुए अपवित्र कीड़े की विष्ठा ही में और इन्द्र की स्वर्ग में एक सी जीने की इच्छा है और मृत्यु का भय दोनों को समान ही है ।

जीवानां रक्षणं श्रेष्ठं जीवा जीवितकांक्षिणः ।

तस्मात् समस्तदानेभ्योऽभयदानं प्रशस्यते ॥ 22 ॥

\*\*\*\*\* 21 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

जीवों की रक्षा करना ही श्रेष्ठ है । सभी जीव अपने जीवन की इच्छा रखते हैं । अतएव अभय-दान की सब दानों में बढ़-बढ़ कर प्रशंसा है ।

“न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।

यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र ! तोष्यते तेन केशवः ॥

स्वर्गाण्ये यदि वांच्छा वो निर्वाणार्थमथासुराः ।

तदलं पशुघातादि दुष्टं धर्मं निवोधत ॥

नैतद्युक्तिसह वाक्यं हिं सा धर्माय नेष्यते ।

हवींष्यनतदग्धानि फलायेत्यर्थकोदितम् ॥

निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गं प्राप्तिर्यदीष्यते ।

स्वपिता यज्ञमानेन किन्न तस्मान्निहन्यते ?”

विष्णु-पुराण

हे नरेन्द्र ! जो और प्राणधारियों को न स्वयं मारता है, न दूसरों से मरवाता है वह ‘विष्णु’ भगवान को सन्तुष्ट करता है ।

हे असुरो ! अगर आप स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करना चाहते हो तो पशुधात आदि अर्धर्म को दुष्ट धर्म समझो ।

हिंसा में धर्म होता है यह बात ठीक नहीं है क्योंकि यह बात बालक भी कह देगा कि आग में जलाया हुआ मेष स्वर्गादि फल को क्या दे सकता है ?

यज्ञ में मरे हुये पशु को स्वर्ग मिलता है तो यज्ञ में वही अपनी आहुति देकर स्वर्ग प्राप्त क्यों न कर ले ?

‘अधर्मो वलवानेष हिंसाधर्मेष्या तव ।

नवः पशुविधिस्त्वष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तमः ॥

अधर्मो धर्मधाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ।

नायं धर्मो हाधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते ।’

हे सर्व-देव-श्रेष्ठ ! तेरे यज्ञों में पशुओं की विधि इष्ट है वह हिंसा धर्म की इच्छा से अधर्म बलवान बनाया है ।

आपने पशुओं के धातक द्वारा ही धर्म का विनाश करने के लिये हिंसारूप अधर्म फैलाया है । वह हिंसा धर्म नहीं अधर्म ही है ।

(मत्स्य - पुराण)

(‘जीवरक्षादर्पण’ पेज नं. 23 to 24)

\*\*\*\*\* 22 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

उपर्युक्त वर्णन से सिन्दू होता है कि भगवान् की आराधना सात्त्विक अहिंसा पद्धति से अति प्राचीन काल से ही प्रचलित थी परन्तु कुछ स्वार्थी धर्मान्ध व्यक्तियों के कारण हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ हुआ था । जब हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ हुआ था तब भी अनेक प्रबुद्ध धर्मात्मा व्यक्ति, उस हिंसामय कार्य को स्वीकार नहीं करते थे और उसका विरोध करते थे । प्राचीन साहित्य से ये भी ज्ञात होता है कि स्वयं रावण ने भी हिंसामय यज्ञ का खूब विरोध किया था । जैन रामायण (पद्मपुराण) से ज्ञात होता है कि एक बार नारद राजपुर नगर की यज्ञशाला में आकाश में बिहार करते हुये पहुंचा । वहाँ जाकर हिंसामय यज्ञ को देखकर यज्ञ के मुख्य यजमान राजा मरुत्वान् से इस हिंसामय यज्ञ को बन्द करने के लिये कहा । नारद की बात सुनकर संवर्त नामक याजक कुपित होकर नारद को अपशब्द कहने लगा । इतना ही नहीं, वहाँ के सब ब्राह्मण मिलकर नारद को घेरकर मारने लगे । उस समय रावण कारणवश लंका से भारत आया था । इसी बीच में रावण का दूत आ रहा था, सो उसने पिटे हुये नारद को देखकर पहचान लिया । उसने शीघ्र ही लौटकर रावण से इस, प्रकार कहा कि हे महाराज ! मुझ दूत को आपने जिसके पास भेजा था वह अकेला ही राजा के देखते हुये बहुत—से दुष्ट ब्राह्मणों के द्वारा उस तरह मारा जा रहा है कि जिस प्रकार कि बहुत—से दुष्ट पतंगे किसी साँप को मारते हैं । मैं शक्तिहीन था और राजा को वहाँ देख, भय से पीड़ित हो गया इसलिये यह दारुण वृत्तान्त आपसे कहने के लिये दौड़ा आया हूँ । यह समाचार सुनते ही रावण क्रोध को प्राप्त हुआ और वेगशाली वाहन पर सवार हो यज्ञ भूमि में जाने के लिये तत्पर हुआ । वायु के समान जिनका वेग था, जो म्यानों से निकली हुई नंगी तलवारें हाथ में लिये थे और सू—सू शब्द से सुशोभित थे ऐसे रावण के सिपाही पहले ही चल दिये थे । वे पल भर में यज्ञ—भूमि में जा पहुंचे । वहाँ जाकर उन दयालु पुरुषों ने दृष्टि मात्र से नारद को शत्रु रूपी पिंजड़े से मुक्त करा दिया ।

‘निस्त्रिंशनरवृन्दैश्च रक्षिता पशुसंहतिः ।  
मौचिता तै सहुङ्कारं चक्षुर्तिक्षेपमात्रतः ॥ 267 ॥’

क्रूर मनुष्य जिस पशुओं के झुण्ड की रक्षा कर रहे थे उसे उन्होंने आँख के इशारे मात्र से छुड़वा दिया ।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

‘भज्यमानैस्ततो यैरताऽचमानैद्विजातिभिः ।

पशुभिर्मुच्यमानैश्च जातं सांरायिणं महत् ॥ 268 ॥’

यज्ञ के खम्मे तोड़ डाले, ब्राह्मणोंकी पिटाई लगाई और पशुओं को बन्धन से छोड़ दिया । इन सब कारणों से वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया ।

‘अब्रहमण्यकृताऽवास्ताऽचन्ते तावदेकशः ।

यावन्निपतिता भूमौ विश्वे निस्पन्दविवतहाः ॥ 269 ॥

“अब्रहमण्य” “अब्रहमण्य”की रट लगाने वाले एक—एक ब्राह्मण को इतना पीटा कि जब तक वे निश्चेष्ट शरीर होकर भूमि पर गिर न पड़े तब तक पीटते ही गये ।

‘भटैश्च पर्यचोद्यन्त यथा वो दुःखमप्रियम् ।

सुखं च दयितं तद्वत्पशूनामपि दृश्यताम् ॥ 270 ॥’

रावण के योद्धाओं ने उन ब्राह्मणों से पूछा कि जिस प्रकार आप लोगों को दुःख अप्रिय लगता है और सुख प्रिय जान पड़ता है उसी तरह इन पशुओं को भी लगता होगा ।

‘यथा हि जीवितं कान्तं त्रैलोक्यस्यापि भावतः ।

भवतात् सर्वजन्त्वानामियमेव व्यवस्थितिः ॥ 271 ॥

जिस प्रकार तीन लोक के समस्त जीवों को हृदय से अपना जीवन अच्छा लगता है उसी प्रकार इन समस्त जन्तुओं की भी व्यवस्था जाननी चाहिये ।

‘भवतां ताऽचमानानां कष्टा तावदियं व्यथा ।

शस्त्रेविंशत्यमानानां पशूनां तु किमुच्यताम् ॥ 272 ॥

आप लोगों को जो पिटाई लगी है उससे आप लोगों की यह कष्टकारी अवस्था हुई है फिर शस्त्रों से मारे गये पशुओं की क्या दशा होती होगी सो आप ही कहो । अरे पापी नीच पुरुषों ! इस समय तुम्हारे पाप का जो फल प्राप्त हुआ है उसे सहन करो जिससे फिर ऐसा न करोगे । देवों के साथ इन्द्र भी यहाँ आ जाये तो भी हमारे स्वामी के कुपित रहते तुम लोगों की रक्षा नहीं हो सकती । हाथी, घोड़े, रथ, आकाश और पृथ्वी पर जो भी जहाँ स्थित था वह वहाँ से शस्त्रों द्वारा ब्राह्मणों को मार रहा था और ब्राह्मण चिल्ला रहे थे कि ‘अब्रहमण्यम्’ बड़ा अनर्थ हुआ । हे राजन् ! हे माता यज्ञवाली हमारी रक्षा करो । हे योद्धाओं ! हम जीवित रह सकें इसलिये हमें छोड़ दो, अब ऐसा नहीं करेंगे ।’ इस प्रकार दीनता के साथ अत्यन्त विलाप करते हुये वे

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

ब्राह्मण, केंचुए जैसी दशा को प्राप्त थे फिर भी रावण के योद्धा उन्हें पीटते जाते थे। तदनन्तर ब्राह्मणों के समूह को पीटता देख नारद ने रावण से इस प्रकार कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं इन दुष्ट शिकारी ब्राह्मणों के द्वारा मारा जा रहा था जो आपने मुझे इनसे छुड़ाया। यह कार्य चूंकि ऐसा ही होना था सो हुआ इन पर दया करो। ये क्षुद्र जीव जीवित रह सके ऐसा करो। अपना जीवन इन्हें प्रिय है। अथानन्तर नीति के जानकार राजा मरुत्व ने हाथ जोड़कर तथा सिर के बाल जमीन पर लगाकर रावण को प्रणाम किया और निम्नांकित वचन कहे। हे लंकेश मैं आपका दास हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न होइए। अज्ञानवश जीवों से खोटे काम ही बन जाते हैं। मेरी कनकप्रभा नाम की कन्या है सो इसे आप स्वीकृत कीजिये क्योंकि सुन्दर वस्तुओं के पात्र आप ही हैं।' नम्र मनुष्यों पर दया करना जिसका स्वभाव था और निरन्तर जिसका अभ्युदय बढ़ रहा था ऐसे रावणने कनकप्रभा को स्वीकृत कर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह कर लिया। राजा मरुत्व ने सन्तुष्ट होकर रावण के सामन्तों और योद्धाओं का वाहन, वस्त्र तथा अलंकार आदि से यथायोग्य सत्कार किया।

(‘पद्मपुराण’ पृष्ठ सं. 258 to 262)

महावीर भगवान एवं महात्मा बुद्ध ने भी हिंसामय यज्ञ का विरोध किया था। इतना ही नहीं, आधुनिक ऐतिहासिक काल में भी महर्षि दयानन्द, राजा राममोहनराय, गुरुनानक, लोकमान्यतिलक, महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी आदि ने भी हिंसामय यज्ञों का निषेध किया था। इन महापुरुषों के कारण हिंसामय यज्ञ बहुत हद तक बन्द हो गया है। यह धर्म के लिये बहुत एक रचनात्मक कदम है। हिंसा से पाप बन्ध होता है, जिससे अगले जन्म में नरक गति मिलती है। इतना ही नहीं पशुगति का हास होता है, जिससे प्रकृति का सन्तुलन बिगड़ जाता है और प्रदूषण फैल जाता है। जिसके कारण अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, भूकम्प, भूचाल आदि प्राकृतिक विपदायें विश्व में हैं। इन विपदाओं के कारण मनुष्य की अपूर्णीय क्षति होती है। इसलिये पशुओं का वध माने प्रत्यक्ष रूप से एवं परोक्ष रूप से मनुष्य जाति का वध है। कहा जाता है –

“परवहा आद वहा होई”

“जो सिर काटे और का अपना रहे कटाय,  
धीरे-धीरे नानका, बदला कहीं नहीं जाय ॥”

(गुरुनानक)

\*\*\*\*\* 25 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

“दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।  
तुलसी दया न छोड़िये, जब तक घट में प्राण ॥”

(तुलसीदास)

दण्ड से लोग डरते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है, दूसरों को अपने जीसा ही मानकर मनुष्य किसी को मारने की प्रेरणा न करें।

“सब्वे वसन्ति दण्डस्य सब्वे भायन्ति प्रच्चुनो ।  
उतानं उपमं कत्वा न हन्तेद्य धातये ॥”

(बौद्ध धर्म, धम्पपद)

दण्ड से सभी लोग डरते हैं। मृत्यु से भी भय खाते हैं। दूसरों को अपने जीसा मानकर मनुष्य न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करें।

“प्राणी धातात यो धर्म महिते मूढ़ मानसः ।  
स वाञ्छति सुधावृष्टिं कृष्णाऽहि मुख कोटरात् ॥” (व्यास वाक्य)

प्राणी धात से जो मूढ़ मति धर्म को चाहता है, वह मानो अत्यन्त भयंकर विषधरं कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि को चाहता है अर्थात् कृष्ण सर्प के मुख से अमृत वृष्टि नहीं हो सकती है। उसी प्रकार धात से धर्म नहीं हो सकता है। इसलिये अमृतचन्द्र आचार्य कहते हैं –

“अमृतत्व हेतु भूतं परममहिंसारसायनं लब्ध्वा” (पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

अमृत तत्व के हेतु भूत अहिंसा परम रसायन है अर्थात् अहिंसा रूपी अमृतपान से जीव को शाश्वतिक अजर अमर अनन्त सुख सम्पन्न मोक्ष मिलता है।

“अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरं त्यागः” (पतञ्जलियोग द.)

अहिंसा में स्थिर होने पर उस अहिंसक महात्मा के संपर्क – सहवास दर्शन स्पर्शन से सब प्राणियों का द्वेष भाव नष्ट हो जाता है। अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है, अहिंसा जगदम्बा है, अहिंसा ही परम नीति है, अहिंसा ही परमदान है, अधिक क्या अहिंसा ही धर्म है, अमृत है, अहिंसा ही परमात्मा स्वरूप है। इससे ही विश्व – शान्ति, विश्वमैत्री, सह अस्तित्व, युद्ध निरस्त्रीकरण हो सकता है। अधिक क्या विश्व में युद्ध का नाम निशान भी नहीं रह सकता है। अहिंसा के पूर्ण प्रसार से पुलिस, न्यायालय, मिलिट्री आदि की आवश्यकता नहीं होगी। प्रत्येक स्थान में धर्म राज्य रामराज्य ही हो जायेगा। इसलिये

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

अहिंसा रूपी अमृत का सबको सेवन करना परम कर्तव्य है । (177)

ईसा - मसीह ने भी हिंसा का निषेध करते हुए कहा -

*Thous shailn't kill.*

कोई भी प्राणी को मत मारो"

इन उपरोक्त दृष्टिकोणों को रखकर चिन्तकों ने कहा -

"हिंसा प्रसूतानि सर्व दुःखानि ।"

हिंसा सम्पूर्ण दुःखों को जन्म देती है । धर्म उसे कहते हैं जिससे समस्त प्राणियों को सुख प्राप्त हो । इसलिये धर्म के नाम पर पशु-बलि रूपी हिंसा करना किसी भी दृष्टिकोण से विधेय नहीं है । कभी-कभी समाचार पत्रों से तथा पुस्तकों से पता चलता है कि अभी भी भारत में अनेक स्थानों में पशु-बली चल रही है । इतना ही नहीं कभी-कभी नर-बलि सुनने में पढ़ने में मिल जाती है । जिससे मेरा हृदय अधिक दुःखी हो उठता है । इसलिये मैंने "हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ?" नामक शोधपूर्ण पुस्तक का सम्पादन किया है । इसमें मैंने जैन, बौद्ध, हिन्दुओं के प्राचीन साहित्य से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि प्राचीन काल में भारत में किसी भी धर्म में हिंसामय यज्ञ का प्रचलन नहीं था ।

इस पुस्तक का अध्ययन करके हिंसा को त्याग करके अहिंसामय धर्म का परिपालन करें जिससे स्वपर कल्याण इह लोक परलोक कल्याण करें । विश्व के सम्पूर्ण जीव सुखी रहें । इन महती शुभ कामनाओं के साथ -

"सर्वे भवन्तु सुखिनः ।

सर्वे सन्तु निरामय ॥

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु ।

मा कश्चिद्दुःखभाग् भवन्तु ॥"

आचार्य कनकनन्दी

## 'हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ'

इसी भारत क्षेत्रमें चारणयुगल नाम का नगर है । उसमें सुयोधन नाम का राजा राज्य करता था । उसकी पट्टरानी का नाम अतिथि था, इन दोनों के सुलसा नाम की पुत्री थी । उसके स्वयंवर के लिये दूतों के कहने से अनेक राजाओं का समूह चारणयुगल पहुँचा । अयोध्या का राजा सगर भी उस स्वयंवर

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

में जाने के लिये उद्यत था परन्तु उसके बालों के समूह में एक बाल सफद था, तेल लगाने वाले सेवक से उसे विदित हुआ कि यह बहुत पुराना है, यह जानकर वह स्वयंवर में जाने से विमुख हो गया, उसे निर्वेद वैराग्य हुआ । राजा सगर के एक मन्दोदरी नामकी धाय थी जो बहुत चतुर थी । उसने सगर के पास जाकर कहा कि यह सफेद बाल नया है और तुम्हें किसी पवित्र वस्तु का लाभ होगा यह कह रहा है ।

उसी समय विश्वभू नाम का मन्त्री भी वहाँ आ गया और कहने लगा कि यह सुलसा अन्य राजाओं से विमुख होकर जिस तरह आपको ही चाहेगी उसी तरह मैं कुशलता से सब व्यवस्था कर दूँगा । मन्त्री के वचन सुनने से राजा संगर बहुत ही प्रसन्न हुआ । वह चतुरंग सेना के साथ राजा सुयोधन के नगर की ओर चल दिया और कुछ दिनों में वहाँ पहुँच भी गया । सगर की मन्दोदरी धाय उसके साथ आयी थी । उसने सुलसा के पास जाकर राजा के कुल, रूप, सौन्दर्य, पराक्रम, नय, विनय, विभव, बन्धु, सम्पत्ति तथा योग्य वर में जो अन्य प्रशंसनीय गुण होते हैं उन सबका व्याख्यान किया । यह सब जानकर राजकुमारी सुलसा राजा सगर में आसक्त हो गई । जब सुलसा की माता अतिथि को इस बात का पता चला तब उसने युक्तिपूर्ण वचनों से राजा सगर की बहुत निन्दा की और कहा कि सुरम्य देश के पोदनपुर नगर का राजा बाहुबली के वंश में होने वाले राजाओं में श्रेष्ठ तृणपिंगल नामका मेरा भाई है । उसकी रानी का सर्वयशा है, उन दोनों के मधुपिंगल नामका पुत्र है जो वर के योग्य समस्त गुणों से गुणनीय है - प्रशंसनीय है और नई अवस्था में विद्यमान है । आज तुझे मेरी अपेक्षा से ही उसे वरमाला डालकर सन्मानित करना चाहिये । सौत का दुःख देने वाले अयोध्यापति राजा सगर से तुझे क्या प्रयोजन है ? माता अतिथि ने यह वचन कहे, जिन्हें सुलसा ने भी उसे आग्रहवश स्वीकृत कर लिया उसी समय से अतिथि देवी ने किसी उपाय से कन्या के समीप मन्दोदरी का आना-जाना आदि बिलकुल रोक दिया । मन्दोदरी ने अपने प्रकृत कार्य की रुकावट राजा सगर से कही और राजा सगर ने अपने मन्त्री से कहा कि हमारा जो मनोरथ है वह तुम्हें सब प्रकार से सिद्ध करना चाहिये । बुद्धिमान मन्त्री ने राजा की बात स्वीकार कर स्वयंवर विधान नाम का एक ऐसा ग्रन्थ बनवाया कि जिसमें वर के अच्छे एवं बुरे लक्षणों \*\*\*\*\* 28 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

का वर्णन किया गया था। उसने वह ग्रन्थ पुस्तक के रूप में निबन्ध कर एक सन्दूक में रखा और वह सन्दूक उसी नगर सम्बन्धी उद्यान के किसी वन में जमीन में छिपाकर रख दी। यह कार्य इतनी सावधानी से किया कि किसी को इसका पता भी नहीं चला। कितने ही दिन बीत जाने पर वन की पृथिवी खोदते समय उसने हल के अंग्रेजी से वह पुस्तक निकाली और कहा कि इच्छानुसार खोदते हुए मुझे यह सन्दूक मिली है। यह कोई प्राचीन शास्त्र है इस प्रकार कहता हुआ वह आश्चर्य प्रकट करने लगा, मानो कुछ जानता ही नहीं हो।

उसने यह पुस्तक राजकुमारों के समूह में बचवाई। उसमें लिखा था कि कन्या और वर के समुदाय में जिसकी आँख सफेद और पीली हो, माला के द्वारा उसका सत्कार नहीं करना चाहिए। अन्यथा कन्या की मृत्यु हो जाती है या वर मर जाता है इसलिए पाप, डर और लज्जा वाले पुरुष को सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिये। यदि कोई पापी प्रविष्ट भी हो जाये तो उसे निकाल देना चाहिए।

मधुपिंगल में यह सब गुणविद्यमान थे। अतः वह यह सब सुनकर लज्जावश वहाँ से बाहर चला गया और हरिषेण गुरु के पास जाकर उसने तप धारण कर लिया। यह जानकर अपनी इष्टसिद्धि होने से राजा सगर, विश्वभू मन्त्री, तथा कुटिल अभिप्राय वाले अन्य मनुष्य हर्ष को प्राप्त हुए। मधुपिंगल के भाई-बन्धुओं को तथा अन्य सज्जन मनुष्यों को उस समय दुःख हुआ। देखो! स्वार्थी मनुष्य दूसरों को ठगने से उत्पन्न हुए बड़े भारी पाप को नहीं देखते हैं। इधर राजा सुयोधन ने आठ दिन तक जिनेन्द्र भगवान् की महापूजा की और उसके अन्त में अभिषेक किया। तदनन्तर उत्तम कन्या सुलसा को स्नान कराया, आभूषण पहिनाये और शुद्ध तिथि वार आदि के दिन अनेक उत्तम योद्धाओं से घिरी हुई उस कन्या को पुरोहित रथ में बैठाकर स्वयंवर मण्डप में ले गया। वहाँ अनेक राजा उत्तम-उत्तम आसनों पर समारूढ़ थे। पुरोहित उनके कुल जाति आदि का पृथक्-पृथक् क्रम पूर्वक निर्देश करने लगा परन्तु सुलसा अयोध्या के राजा सगर में आसक्त थी। अतः उन सब राजाओं को छोड़ती हुई आगे बढ़ती गई और सगर के गले में ही माला डालकर उसका शरीर माला से अलंकृत किया। 'इन दोनों का समागम विधाता ने ठीक ही

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

किया है' यह कहकर वहाँ जो राजा ईर्ष्या रहित थे वे बहुत ही सन्तुष्ट हुए। विवाह की विधि समाप्त होने पर लक्ष्मी सम्पन्न राजा सगर सुलसा के साथ वहाँ पर कुछ दिन तक सुख से रहने लगा।

इधर मधुपिंगल साधु-संयम धारण किये थे। एक दिन वे आहार के लिए किसी नगर में गये थे। वहाँ कोई निमित्तज्ञानी उनके लक्षण देखकर कहने लगा कि 'इस युवा के चिन्ह तो पृथिवी का राज्य करने के योग्य हैं परन्तु यह भिक्षा भोजन करनेवाला है इससे जान पड़ता है कि इन सामुद्रिक शास्त्रों से क्या प्रयोजन सिन्धु हो सकता है ? ये सब व्यर्थ है।' इस प्रकार उस निमित्तज्ञानी ने लक्षणशास्त्र-सामुद्रिक शास्त्र की निन्दा की। उसके साथ ही दूसरा निमित्तज्ञानी था वह कहने लगा कि 'यह तो राज्यलक्ष्मी का उपभोग करता था परन्तु राजा सगर के मन्त्री ने झूठ-मूठ ही कृत्रिम शास्त्र दिखाकर इसे दूषित ठहरा दिया और इसीलिए इसने लज्जावश तप धारण कर लिया। इसके चले जाने पर सगर ने सुलसा को स्वीकृत कर लिया।' उस निमित्तज्ञानी के वचन सुनकर मधुपिंगल मुनि क्रोधाग्नि से प्रज्ज्वलित हो गये।

'मैं इस तप के फल से दूसरे जन्म में राजा सगर के समस्त वंश को निर्मूल करूँगा' ऐसा उन बुद्धिहीन मधुपिंगल मुनि ने निदान कर लिया। अन्त में मरकर वह असुरेन्द्र की महिष जाति की सेना की पहली कक्षा में चौसठ हजार असुरों का नायक महाकाल नाम का असुर हुआ। वहाँ उत्पन्न होते ही उसे अनेक आत्मीय देवों ने धेर लिया। 'मैं इस देवलोक में किस कारण से उत्पन्न हुआ हूँ' जब वह इस बात का स्मरण करने लगा तो उसे विभंगावधिज्ञान के द्वारा अपने पूर्वभव का सब समाचार याद आ गया। याद आते ही उस पापी का चित्त क्रोध से भर गया। मन्त्री और राजा के ऊपर उसका वैर जम गया। यद्यपि उन दोनों पर उसका वैर जमा हुआ था तथापि वह उन्हें जान से नहीं मारना चाहता था, उसके बदले वह उनसे कोई भयंकर पाप करवाना चाहता था। वह असुर इसके योग्य उपाय तथा सहायकों का विचार करता हुआ पृथिवी पर आया परन्तु उसने इस बात का विचार नहीं किया कि इससे मुझे बहुत भारी पाप का संचय होता है। आचार्य कहते हैं कि ऐसी मूढ़ता के लिये धिक्कार है। उधर वह अपने कार्य के योग्य उपाय और सहायकों की चिन्ता कर रहा था इधर उसके अभिप्राय को सिन्धु करने वाली दूसरी घटना

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*  
घटित हुई जो इस प्रकार है ।

इसी जन्मद्वीप सम्बन्धी भरतक्षेत्र के ध्वल देश में एक स्वस्तिकावती नाम का नगर है । हरिवंश में उत्पन्न हुआ राजा विश्वावसु उसका पालन करता था । इसकी स्त्री का नाम श्रीमती था । उन दोनों के बसु नाम का पुत्र था । उसी नगर में एक क्षीरकदम्ब नाम का पूज्य ब्राह्मण रहता था । वह समस्त शास्त्रों का विद्वान् था और प्रसिद्ध श्रेष्ठ अध्यापक था । उसके पास उसका लड़का पर्वत, दूसरे देश से आया हुआ नारद और राजा का पुत्र बसु ये तीन छात्र एक साथ पढ़ते थे । ये तीनों ही छात्र विद्याओं के पार को प्राप्त हुए थे, परन्तु उन तीनों में पर्वत, निर्बुद्धि था, वह मोह के उद्यम से सदा विपरीत अर्थग्रहण करता था । बाकी दो छात्र, पदार्थ का स्वरूप जैसा गुरु बताते थे वैसा ही ग्रहण करते थे । किसी एक दिन ये तीनों अपने गुरु के साथ कुश आदि लाने के लिए वन में गये थे । वहाँ एक पर्वत की शिला पर श्रुतधर नाम के गुरु विद्यमान थे ।

अन्य तीन मुनि उन श्रुतधर गुरु से अष्टांगनिमित्त ज्ञान का अध्ययन कर रहे थे । जब अष्टांगनिमित्त ज्ञान का अध्ययन पूर्ण हो गया तब वे तीनों मुनि उन गुरु की स्तुति कर बैठ गये । उन्हें बैठा देखकर श्रुतधर मुनिराज ने उनकी चतुराई की परीक्षा करने के लिए पूछा कि जो ये तीन छात्र बैठे हैं इनमें किसका क्या नाम है ? क्या कुल है ? क्या अभिप्राय है ? और अन्त में किसकी क्या गति होगी ? यह आप लोग कहें । उन तीन मुनियों में एक आत्मज्ञानी मुनि थे । वे कहने लगे कि सुनिये ! यह जो राजा का पुत्र बसु हमारे पास बैठा हुआ है वह तीव्र रागादि-दूषित है अतः हिंसारूप धर्म का निश्चयकर नरक जावेगा । तदनन्तर बीच में बैठे हुए दूसरे मुनि कहने लगे कि यह जो ब्राह्मण का लड़का है, इसका पर्वत नाम है, यह निर्बुद्धि है, कूर है, यह महाकाल के उपदेश से अर्थव॒वेद नामक पापप्रवर्तक शास्त्र का अध्ययन कर खोटे मार्ग का उपदेश देगा । यह अज्ञानी हिंसा को ही धर्म समझता है, निरन्तर रौद्रध्यान में तत्पर रहता है और बहुत लोगों को उसी मिथ्यामार्ग में प्रवृत्त करता है अतः नरक जावेगा । तदनन्तर तीसरे मुनि कहने लगे कि यह जो पीछे बैठा है इसका नारद नाम है, यह जाति का ब्राह्मण है, बुद्धिमान है, धर्मध्यान में तत्पर रहता है, अपने आश्रित लोगों को आहंसारूप धर्म का उपदेश देता है, यह आगे चलकर गिरिट नामक नगर का राजा होगा और

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*  
अन्त में परिग्रह छोड़कर तपस्वी होगा तथा अन्तिम अनुत्तर विमान में उत्पन्न होगा । इस प्रकार उन तीनों मुनियों का कहा सुनकर श्रुतधर मुनिराज ने कहा कि तुम लोगों ने मेरा कहा उपदेश ठीक-ठीक ग्रहण किया है ऐसा कहकर उन्होंने उन तीनों मुनियों की स्तुति की । इधर एक वृक्ष के आश्रय में बैठा हुआ क्षीरकदम्ब उपाध्याय, यह सब बड़ी सावधानी से सुन रहा था । सुनकर वह विचारने लगा कि विधि की लीला बड़ी विचित्र है, देखो, इन दोनों की पर्वत और बसु की अशुभगति होने वाली है, इनके अशुभ कर्म को धिक्कार हो, धिक्कार हो, मैं इस विषय में कर ही क्या सकता हूँ ? ऐसा विचारकर उसने उन मुनियों को वहाँ वृक्ष के नीचे बैठे-बैठे भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और फिर बड़ी उदासीनता से उन तीनों छात्रों के साथ वह अपने नगर में आ गया ।

एक वर्ष के बाद शास्त्राध्ययन तथा बाल्यावस्था पूर्ण होने पर बसु के पिता विश्वावसु, बसु को राज्यपट्ट बाँधकर स्वयं तप के लिए वनमें चले गये । इधर बसु पृथिवी का अनायास ही निष्कण्टक पालन करने लगा । किसी एक दिन वह विहार करने के लिये वन में गया था । वह क्या देखता है कि बहुत से पक्षी आकाश में जाते-जाते टकराकर नीचे गिर रहे हैं । यह देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । यह विचार करने लगा कि आकाश से जो ये पक्षी नीचे गिर रहे हैं इसमें कुछ कारण अवश्य होना चाहिये । यह विचारकर उसने उस स्थान का ज्ञान प्राप्त करने के लिए धनुष खींचकर एक बाण छोड़ा, वह बाण भी वहाँ टकराकर नीचे गिर पड़ा ।

यह देख, राजा बसु वहाँ स्वयं गया और सारथि के साथ उसने उस स्थान का स्पर्श किया । स्पर्श करते ही उसे मालूम हुआ कि यह आकाश-स्फटिक का स्तम्भ है, वह स्तम्भ आकाश के रंग से इतना मिलता-जुलता था कि किसी दूसरे को आज तक उसका बोध नहीं हुआ था । राजा बसु ने उस स्तम्भ को घर लाकर उसके चार बड़े-बड़े पाये बनवाये और उनका सिंहासन बनवाकर वह उस पर आरूढ़ हुआ । उस समय अनेक राजा आदि उसकी सेवा करते थे । लोग बड़े आश्चर्य से उसकी उन्नति की घोषणा करते हुए कहते थे कि देखो, राजा बसु सत्य के माहात्म्य से सिंहासन पर अधर आकाश में बैठता है ।

\*\*\*\*\* 32 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इस प्रकार इधर राजा वसु का समय बीत रहा था उधर एक दिन पर्वत और नारद, समिधा तथा पुष्प लाने के लिये वन में गये थे। वहाँ वे क्या देखते हैं कि कुछ मयूर, नदी के प्रवाह का पानी पीकर गये हुए हैं। उसका मार्ग देखकर नारद ने पर्वत से कहा कि हे पर्वत ! ये जो मयूर गये हुए हैं उनमें एक तो पुरुष है और बाकी सात स्त्रियाँ हैं। नारद की बात सुनकर पर्वत ने कहा कि तुम्हारा कहना झूठ है। उसे मन में इह बात का पता चला कि नारद का कहा सच है तो वह आश्चर्य को प्राप्त हुआ। वे दोनों वहाँ से कुछ आगे बढ़े तो नारद हाथियों का मार्ग देखकर मुस्कराता हुआ बोला कि यहाँ से अभी जो हस्तिनी गई है उसका बायां नेत्र अन्धा है। पर्वत ने कहा कि तुम्हारा पहला कहना अन्धे साँप का बिल में पहुँच जाने के समान यों ही सच निकल आया यह ठीक है परन्तु तुम्हारा यह विज्ञान हँसी को प्राप्त होता है। मैं क्या समझूँ ? इस तरह हँसते हुए ईर्ष्या से उसने कहा और चित्त में आश्चर्य प्राप्त किया।

तदनन्तर नारद को झूठा सिद्ध करने के लिये वह हस्तिनी के मार्ग का अनुसरण करता हुआ आगे बढ़ा और नगर तक पहुँचने से पहले ही उसे इस बात का पता चल गया कि नारद ने जो कहा था वह सच है। अब तो पर्वत के शोक का पार नहीं रहा। वह शोक करता हुआ बड़े आश्चर्य से घर आया और नारद की कही हुई सब बात माता से कहकर कहने लगा कि पिताजी जिस प्रकार नारद को शास्त्र की व्याधार्थ बात बतलाते हैं उस प्रकार मुझे नहीं बतलाते हैं। ये सदा मेरा अनादर करते हैं। इस तरह पुत्रोदय से विपरीत विचार करने के कारण पुत्र के वचन, तीक्ष्णशास्त्र के समान उसके हृदय को चीरकर भीतर धुस गये। ब्राह्मणी पुत्र के वचनों को विचार कर हृदय से शोक करने लगी। जब ब्राह्मण क्षीरकदम्ब स्नान, अग्निहोत्र तथा भोजन करके बैठा तब ब्राह्मणी ने पर्वत द्वारा कही हुई सब बात कह सुनाई।

उसे सुनकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण कहने लगा कि मैं तो सबको एक-सा उपदेश देता हूँ परन्तु प्रत्येक पुरुष की बुद्धि भिन्न-भिन्न हुआ करती है यही कारण है कि नारद कुशल हो गया है। तुम्हारा पुत्र स्वभाव से ही मन्द है, इसलिये नारद पर व्यर्थ ही ईर्ष्या न करो। यह कहकर उसने विश्वास दिलाने के लिये पुत्र के समीप ही नारद से कहा कि कहो, आज वन में धूमते हुए तुमने पर्वत के साथ क्या उपद्रव किया था ?

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

गुरु की बात सुनकर वह कहने लगा कि बड़ा आश्चर्य है ? यह कहते हुए उसने बड़ी विनय से कहा कि मैं पर्वत के साथ विनोद-वार्ता करता हुआ वन में जा रहा था। वहाँ मैंने देखा कि कुछ मयूर पानी पीकर नदी से अभी हाल लौट रहे हैं। उनमें जो मयूर था वह अपनी पूँछ के चन्द्रक पानी में भीग कर भारी हो जाने के भय से अपने पैर पीछे की ओर रख फिर मुँह फिराकर लौटा था और बाकी जल से भीगे हुए अपने पंख फटकारकर जा रहे थे। यह देख मैंने अनुमान द्वारा पर्वत से कहा था कि इनमें एक पुरुष है और बाकी स्त्रियाँ हैं। इसके बाद वन के मध्य से चलकर किसी नगर के समीप देखा कि चलते समय किसी हस्तिनी के पिछले पैर उसी के मूत्र से भीगे हुए है इससे मैंने जाना कि यह हस्तिनी है। उसके दाहिनी ओर के वृक्ष और लूटाएँ टूटी हुई थीं इससे जाना कि यह हथिनी बाई आँख से कानी है। उस पर बैठी हुई स्त्री गर्भिणी है। उसकी साड़ी का एक छोर किसी ज्ञाड़ी में उलझकर लग गया था। इससे जाना कि वह सफेद साड़ी पहने थी। जहाँ हस्तिनी ठहरी थी उस घर के अग्रभाग पर सफेद ध्वजा ऊपर की सब बातें कही थीं।

नारद की ये सब बातें सुनकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने ब्राह्मणी के समक्ष प्रकट कर दिया कि इसमें मेरा अपराध कुछ भी नहीं हैं – मैंने दोनों को एक-समान उपदेश दिया है। उस समय पर्वत की माता भी यह सब सुनकर बहुत प्रसन्न हुई थी। तदनन्तर उस ब्राह्मण ने पर्वत की माता को उन मुनियों के वचनों का विश्वास दिलाने की इच्छा की। वह अपने पुत्र पर्वत और विद्यार्थी नारद के भावों की परीक्षा करने के लिये स्त्री सहित एकान्त में बैठा।

उसने आटे के दो बकरे बनाकर पर्वत और नारद को सौंपते हुए कहा कि जहाँ कोई देख न सके ऐसे स्थान में ले जाकर चन्दन तथा माला आदि मांगलिक पदार्थों से इनकी पूजा करो और फिर कान काटकर इन्हें आज ही यहाँ ले आओ। तदनन्तर पापी पर्वत ने सोचा कि इस वन में कोई नहीं है इसलिए वह एक बकरे के दोनों कान काटकर पिता के पास वापस आ गया और कहने लगा कि हे पूज्य ! आपने जैसा कहा था मैंने वैसा ही किया है। इस प्रकार दयाहीन पर्वत ने बड़े हर्ष से अपना कार्य पूर्ण करने की सूचना पिता को दी। नारद भी वन में गया और सोचने लगा कि ‘‘अदृश्य स्थान में जाकर इसके कान काटना है’’ ऐसा गुरुजी ने कहा था परन्तु यहाँ अदृश्य

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

स्थान है ही कहाँ ? देखो न, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र और ग्रह आदि देवता सब ओर से देख रहे हैं । पक्षी तथा हरिण आदि अनेक जंगली जीव सदा पास ही रह रहे हैं । ये किसी भी तरह यहाँ से दूर नहीं किये जा सकते । ऐसा विचारकर वह भव्यात्मा गुरु के पास वापिस आ गया और कहने लगा कि वन में ऐसा स्थान मिलना असम्भव है जिसे किसी ने नहीं देखा हो । इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चारों पदार्थों में पाप तथा निन्दा उत्पन्न करने वाली क्रियाएं करने का विधान नहीं है इसलिए मैं इस बकरे को ऐसा ही लेता आया हूँ ।

नारद के वचन सुनकर उस ब्राह्मण ने अपने पुत्र की मूर्खता पर विचार किया और कहा कि जो एकान्तवादी कारण के अनुसार कार्य मानते हैं वह एकान्तवाद है और मिथ्यामत है, कहाँ तो कारण के अनुसार कार्य होता है और कहाँ इसके विपरीत भी होता है, ऐसा जो स्याद्वाद का कहना है वही सत्य है । देखो, मेरे परिणाम सदा दया से आद्र रहते हैं परन्तु मुझसे जो पुत्र हुआ उसके परिणाम अत्यन्त निर्दय हैं । यहाँ कारण के अनुसार कार्य कहाँ हुआ ? इस प्रकार वह श्रेष्ठ विद्वान् बहुत ही सन्तुष्ट हुआ और शिष्य की योग्यता को हृदय में विचारकर कहने लगा कि हे नारद ! तू ही सूक्ष्म बुद्धि वाला और पदार्थ का यथार्थ जाननेवाला है इसलिए आज से मैं तुझे उपाध्याय पद पर नियुक्त करता हूँ । आज से तू ही समस्त शास्त्रों का व्याख्यान करना । इस प्रकार उसी का सत्कार कर उसे बढ़ावा दिया सो ठीक ही है क्योंकि सब जगह विद्वानों की प्रीति गुणों से ही होती है ।

नारद से इतना कहने के बाद उसके सामने बैठे हुए पुत्र से इस प्रकार कहा – हे पुत्र ! तूने विवेक के बिना ही यह विरुद्ध कार्य किया है । देख ! शास्त्र पढ़ने पर भी तुझे कार्य और अकार्य का विवेक नहीं हुआ । तू निर्बुद्धि है अतः मेरी आँखों से ओझल होने पर कैसे जीवित रह सकेगा ! इस प्रकार शोक से भरे हुए पिता ने पर्वत को शिक्षा दी परन्तु उस मूर्ख पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ । वह उसके विपरीत नारद से वैर रखने लगा सो ठीक ही है क्योंकि दुर्बुद्धि मनुष्यों की ऐसी ही दशा होती है ।

किसी एक दिन क्षीरकदम्ब ने समस्त परिग्रहों के त्याग करने का विचार किया इसलिए उसने राजा वसु से कहा कि यह पर्वत और उसकी माता यद्यपि

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

मन्दबुद्धि है तथापि हे भद्र ! मेरे पीछे भी तुम्हें इनका सब प्रकार से पालन करना चाहिये । उत्तर में राजा वसु ने कहा कि मैं आपके अनुग्रह से प्रसन्न हूँ । यह कार्य तो बिना कहे ही करने के योग्य है इसके लिए आप क्यों कहते हैं ? हे पूज्यपाद ! इसमें थोड़ा भी संशय नहीं कीजिये, आप यथायोग्य परलोक की साधना कीजिये । इस प्रकार मनोहर कथा रूपी अम्लान माला के द्वारा राजा वसु ने उस उत्तम ब्राह्मण का खूब सत्कार किया । तदनन्तर क्षीरकदम्ब ने उत्तम संयम धारण कर लिया और अन्त में संन्यासमरण कर उत्तम स्वर्गलोक में जन्म प्राप्त किया ।

इधर समस्त शास्त्रों का जानने वाला पर्वत भी पिता के स्थान पर बैठकर सब प्रकार की शिक्षाओं की व्याख्या करने में प्रेम करने लगा । उसी नगर में सूक्ष्म बुद्धि वाला नारद भी अनेक विद्वानों के साथ निवास करता था और शास्त्रों की व्याख्या द्वारा यश प्राप्त करता था ।

गच्छत्येवं तयोः काले कदाचित्साधुसंसदि ।

अजैर्होत्तव्यमित्यस्य वाक्यस्यार्थप्ररूपणे । (329) ।

विवादोऽभूम्हांस्तत्र विगताङ्करशक्तिकम् ।

यववीज त्रिवर्षस्थमजमित्यभिधीयते । (330) ।

तद्विकारेण सप्ताचिर्मुखे देवाचनं विदः ।

वदन्ति यज्ञमित्याख्यदनुपद्धतिं नारदः । (331) ।

पर्वतोप्यजशब्देन पशुभेदः प्रकीर्तिं ।

यज्ञोऽग्नौ तद्विकारेण होत्रमित्यवदिद्धीः । (332) ।

इस प्रकार उन दोनों का समय बीत रहा था । किसी एक दिन साधुओं की सभा में ‘अजैर्होत्तव्यम्’ इस वाक्य का अर्थ निरूपण करने में बड़ा भारी विवाद चल पड़ा । नारद कहता था कि जिसमें अंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो गई है ऐसा तीन वर्ष का पुराना ‘जौ’ अज कहलाता है और उससे बनी हुई वस्तुओं के द्वारा अग्नि के मुख में देवता की पूजा करना (आहुति देना) यज्ञ कहलाता है । नारद का यह व्याख्यान यद्यपि गुरु-पद्धति के अनुसार था परन्तु निर्बुद्धि पर्वत कहता था कि ‘अज’ शब्द एक पशु-विशेष का वाचक है अतः उससे बनी हुई वस्तुओं के द्वारा अग्नि में होम करना यज्ञ कहलाता है ।

उन दोनों के वचन सुनकर उत्तम प्रकृति वाले साधु पुरुष कहने लगे

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

कि इस दुष्ट पर्वत की नारद के साथ ईर्ष्या है इसीलिए यह 'प्राणवध से धर्म होता है' यह बात पृथ्वी पर प्रतिष्ठापित करने के लिए कह रहा है। यह पर्वत बड़ा ही दुष्ट है, पतित है, अतः हम सब लोगों के साथ वार्तालाप आदि करने में अयोग्य है। इस प्रकार सबने क्रोधवश हाथ की हथेलियों के ताड़न से उस पर्वत का तिरस्कार किया और घोषणा की कि दुर्बुद्धि का ऐसा फल इसी लोक में मिल जाता है।

इस प्रकार सबके द्वारा बाहर निकाला हुआ पर्वत मान-भंग होने से वन में चला गया। वहाँ उस समय महाकाल नाम का असुर ब्राह्मण का वेष रखकर भ्रमण कर रहा था। उस समय वह वृद्ध अवस्था के रूप में था। वह बहुत-सी बलि अर्थात् शरीर की सिकुड़नों को धारण कर रहा था वे सिकुड़ने ऐसी जान पड़ती थी मानो यमराज के चढ़ने के लिए सीढ़ियों का मार्ग ही हो। अन्धे की तरह बार-बार लड़खड़ा कर गिर पड़ता था, उसके शिर पर विरले-विरले सफेद बाल थे, वह एक सफेद रंग की पगड़ी धारण कर रहा था, जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो यमराज के भयसे उसने चाँदी का टोप ही लगा रखा हो, उसके नेत्र कुछ-कुछ बन्द थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो वृद्धावस्था रूपी स्त्री के समागम से उत्पन्न हुए सुख से उसके नेत्र बन्द हो रहे थे, उसकी गति सूँड कटे हुए हाथी के समान थी, वह कुछ साँप के समान लम्बी-लम्बी श्वास भर रहा था, राजा के प्यारे मनुष्य के समान वह मद से आगे नहीं देखता था, उसकी पीठ ठूटी हुई थी। वह स्पष्ट नहीं बोल सकता था, जिस प्रकार राजा योग्य दण्ड से सहित होता है अर्थात् सबके लिये योग्य दण्ड-सजा देता है उसी प्रकार वह भी योग्य दण्ड से सहित था अर्थात् अपने अनुकूल दण्ड लाठी लिया हुआ था, ऊपर से इतना शान्त दिखता था मानो शरीरधारी शम-शान्ति ही हों, विश्वभु मन्त्री सगर राजा और सुलसा कन्या के ऊपर हमारा वैर बँधा हुआ है यह कहने के लिए ही मानों वह तीन लड़का यज्ञोपवीत धारण कर रहा था, वह अपना अभिप्राय सिद्ध करने के लिए योग्य कारण खोज रहा था। ऐसे महाकाल ने पर्वत पर धूमते हुए क्षीरकदम्बक के पुत्र पर्वत को देखा। ब्राह्मण वेशधारी महाकालने पर्वत के सम्मुख जाकर उसे नमस्कार किया और पर्वत ने भी उसका अभिवादन किया। महाकाल ने आश्वासन देते हुए आदर के साथ कहा कि तुम्हारा भला हो। तदनन्तर अजान बनकर महाकाल ने पर्वत

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

से पूछा कि तुम कहाँ से आये हो और इस वन के मध्य में तुम्हारा भ्रमण किस कारण से हो रहा है? पर्वत ने भी प्रारम्भ से लेकर अपना सब वृतान्त कह दिया। उसे सुनकर महाकाल ने सोचा कि यह मेरे वैरी राजा को निर्वंश करने के लिए समर्थ है, यह मेरा साधर्मी है।

ऐसा विचार कर ठगने में चतुर पापी महाकाल पर्वत से कहने लगा कि हे पर्वत! तुम्हारे पिता ने, स्थण्डिल ने, विष्णु ने, उपमन्यु ने और मैने भौम नामक उपाध्याय के पास शास्त्राभ्यास किया था इसलिए तुम्हारे पिता मेरे धर्म भाई हैं। उसके दर्शन करने के लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ था परन्तु खेद है कि वह निष्कल हो गया। तुम डरो मत। शत्रु का नाश करने में मैं तुम्हारा सहायक हूँ। इस प्रकार उस महाकालने क्षीरकदम्बक के पुत्र पर्वत के इष्ट अर्थ का अनुसरण करने वाली अर्थवेद सम्बन्धी साठ हजार ऋचायें पृथक्-पृथक् स्वयं बनायी। ये ऋचायें वेद का रहस्य बतलाने वाली थीं, उसने पर्वत के लिए इनका अध्ययन कराया और कहा कि पूर्वोक्त मन्त्रों से वायु के द्वारा बढ़ी हुई अग्नि की ज्वाला में शान्ति, पुष्टि और अभिचारात्मक क्रियायें की जायें तो पशुओं की हिंसा से इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। तदनन्तर उन दोनों ने विचार किया कि हम दोनों अयोध्या में जाकर रहें और शान्ति आदि फल प्रदान करने वाला हिंसात्मक यज्ञ प्रारम्भ कर अपना प्रभाव उत्पन्न करें। ऐसा कहकर महाकाल ने वैरियों का नाश करने के लिए अपने कूर असुरों को बुलाया और आदेश दिया कि तुम लोग राजा सगर के नगर में जाकर रोगादि से पीड़ित करो। वहाँ मन्त्र मिश्रित आशीर्वाद के द्वारा सगर के दर्शन कर पर्वत ने अपना प्रभाव दिखलाते हुए कहा कि तुम्हारे राज्य में जो धोर अमंगल हो रहा है मैं उसे मन्त्र सहित यज्ञ के द्वारा शीघ्र ही शान्त कर दूँगा। विधाता ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है अतः उनकी हिंसा से पाप नहीं होता किन्तु स्वर्ग के विशाल सुख प्रदान करने वाला पुण्य ही होता है। इस प्रकार विश्वास दिलाकर वह पापी फिर कहने लगा कि तुम यज्ञ की सिद्धि के लिए साठ हजार पशुओं का तथा यज्ञ के योग्य अन्य पदार्थों का संग्रह करो। राजा सगरने भी उसके कहे अनुसार सब वस्तुयें उसके लिये सौंप दी। इधर पर्वत ने यज्ञ आरम्भ कर प्राणियों को यन्त्रित करना शुरू किया - मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन्हें यज्ञ-कुण्ड में डालना शुरू किया।

\*\*\*\*\* 38 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

उधर महाकाल ने उन प्राणियों को विमानों से बैठा कर शरीर सहित आकाश में जाते हुए दिखलाया और लोगों को विश्वास दिला दिया कि ये सब पशु स्वर्ग गये हैं। उसी समय उसने देश के सब अमंगल और उपसर्ग दूर कर दिए। यह देख बहुत से भोले प्राणी उसकी प्रतारणा—माया से मोहित हो गये और स्वर्ग प्राप्त करने की इच्छा से यज्ञ में मरने की इच्छा करने लगे। यज्ञ के समाप्त होने पर उस दुष्ट पर्वत ने विधि—पूर्वक एक उत्तम जाति का घोड़ा तथा राजा की आज्ञा से उसकी सुलसा नाम की रानी को भी होम दिया। प्रिय स्त्री के वियोग से उत्पन्न हुए शोक रूपी दावानल की ज्वाला से जिनका शरीर जल गया है ऐसा राजा सगर राजधानी में प्रविष्ट हुआ।

वहाँ शव्यातल पर अपना शरीर डालकर वह संशय करने लगा कि यह जो बहुत भारी प्राणियों की हिंसा हुई है सो यह धर्म है या अर्धर्म ? ऐसा संशय करता हुआ वह यतिवर नामक मुनि के पास गया और नमस्कार कर पूछने लगा कि हे स्वामिन् ! मैंने जो कार्य प्रारम्भ किया है वह आपको ठीक-ठीक विदित है। विचार कर आप यह कहिए कि मेरा यह कार्य पुण्य रूप है अथवा पाप रूप ? उत्तर में मुनिराज ने कहा कि यह कार्य धर्मशास्त्र से बहिष्कृत है, यह कार्य ही अपने करने वाले को सप्तम नरक भेजेगा। उसकी पहिचान यह है कि आज से सातवें दिन वज्र गिरेगा उससे जान लेना कि तुझे सातवीं पृथ्वी प्राप्त हुई है। मुनिराज का कहा ठीक मानकर राजा ने उस ब्राह्मण पर्वत से यह सब बात कही। राजा की यह बात सुनकर पर्वत कहने लगा कि वह झूठ है, वह नंगा साधु क्या जानता है ? फिर भी यदि तुझे शंका है तो इसकी भी शान्ति कर डालते हैं। इस तरह से वचनों से राजा का मन स्थिर किया और जो यज्ञ शिथिल कर दिया था उसे फिर से प्रारम्भ कर दिया।

तदनन्तर सातवें दिन उस पापी असुर ने दिखलाया कि सुलसा देव पर्याय प्राप्त कर आकाश में खड़ी है, पहले जो पशु होमे गये थे वे भी उसके साथ हैं। वह राजा सगर से कह रही है कि यज्ञ में मरने के फल से ही मैंने यह देवगति पाई है, मैं यह सब हर्ष की बात आपको कहने के लिए ही विमान में बैठकर यहाँ आई हूँ। यज्ञ से सब देवता प्रसन्न हुए हैं और सब पितर तृप्त हुए हैं। उसके यह वचन सुनकर सगर ने विचार किया कि यज्ञ में मरने का फल प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है अतः जैन मुनि के वचन असत्य हैं। उसी समय अनुराग रखने से एवं सद्धर्म के साथ द्वेष करने वाले कर्म की मूल-प्रकृति

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

तथा उत्तर-प्रकृतियों के भेद से उत्पन्न हुए परिणामों से नरकायु को आदि लेकर आठों कर्मों का अपने योग्य उत्कृष्ट स्थिति बन्ध एवं उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध पड़ गया। उसी समय भयंकर वज्रपात हुआ, वह उन सब शत्रुओं पर पड़ा और उस कार्य में लगे हुए सब जीवों के साथ राजा सगर मरकर रौरव नामक सातवें नरक में उत्पन्न हुआ।

अत्यन्त दुष्ट महाकाल भी तीव्र क्रोध करता हुआ अपने वैरसुपी वायु के झकोरे से उसे दण्ड देने के लिए नरक गया परन्तु उसके नीचे जाने की अवधि तीसरे नरक तक ही थी। वहाँ तक उसने उसे खोजा परन्तु जब पता नहीं चला तब वह निर्दय वहाँ से निकला और विश्वभू मन्त्री आदि शत्रुओं को मारने का उपाय करने लगा। उसने माया से दिखाया कि राजा सगर सुलसा के साथ विमान में बैठा हुआ कह रहा है कि मैं पर्वत के प्रसाद से ही सुख को प्राप्त हुआ हूँ। यह देख विश्वभू मन्त्री जो कि सगर राजा के पीछे स्वयं उसके देश का स्वामी बन गया था महामेध यज्ञ में उद्यम करने लगा। महाकाल की माया से सब लोगों को साफ-साफ दिखाया गया था कि आकाशगंगा में बहुत से देव तथा पितर लोग अपने—अपने विमानों में बैठे हुए हैं। राजा सगर तथा अन्य लोग एकत्रित होकर विश्वभू मन्त्री की स्तुति कर रहे हैं कि मन्त्रिन् ! तुम बड़े पुण्यशाली हो, तुमने यह महामेध यज्ञ प्रारम्भ कर बहुत अच्छा कार्य किया।

इधर यह सब हो रहा था उधर नारद तथा तपस्वियों ने जब यह समाचार सुना तो वे कहने लगे कि इस दुष्ट शत्रु ने लोगों के लिए यह मिथ्या मार्ग बतलाया है अतः इसे धिक्कार है। पाप करने में अत्यन्त चतुर इस पर्वत का किसी उपाय से प्रतिकार करना चाहिए। ऐसा विचार कर सब लोग एकत्रित हो अयोध्या नगर में आये। वहाँ उन्होंने पाप करते हुए विश्वभू मन्त्री को देखा और देखा कि बहुत से पापी मनुष्य अर्थ और काम के लिए बहुत से प्राणियों का वध कर रहे हैं। तपस्वियों ने विश्वभू मन्त्री से कहा कि पापी मनुष्य अर्थ और काम के लिए तो प्राणियों का विधात करते हैं परन्तु धर्म के लिए कहीं भी कोई भी मनुष्य प्राणियों का धात नहीं करते। वेद के जानने वालों ने ब्रह्मनिरुपित करने वाली बतलाया है। हे मन्त्रिन् ! यदि तुम पूर्व ऋषियों के इस वाक्य को

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

प्रमाण मानते हो तो तुम्हें हिंसा से भरा हुआ यह कार्य जो कि कर्मबन्ध का कारण है अवश्य ही छोड़ देना चाहिए। सब प्राणियों का हित चाहने वाले तपस्त्रियों ने इस प्रकार कहा परन्तु विश्वभू मन्त्री ने इसे सुनकर कहा कि हे तपस्त्रियो ! जो यज्ञ प्रत्यक्ष ही स्वर्ग का साधन दिखाई दे रहा है उसका अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है ? तदनन्तर इस प्रकार कहने वाले विश्वभू मन्त्री से पापभीरु नारद ने कहा कि हे उत्तम मंत्रिन् ! तू तो विद्वान है, क्या यह सब स्वर्ग का साधन है ? अरे, राजा सगर को परिवार सहित निर्मल नष्ट करने की इच्छा वाले किसी मायावी ने इस तरह प्रत्यक्ष फल दिखाकर यह उपाय रचा है, यह उपाय केवल मूर्ख मनुष्यों को ही मोहित करने का कारण है। इसलिए तू ऋषि प्रणीत आगम में कही हुई शील तथा उंपवास आदि की विधि का आचरण कर। इस तरह नारद के वचन सुनकर विश्वभू ने पर्वत से कहा कि तुमने नारद का कहा सुना ? महाकाल असुर के द्वारा कहे शास्त्र से मोहित हुआ दुर्बुद्धि पर्वत कहने लगा कि यह शास्त्र क्या नारद ने भी पहले कभी नहीं सुना।

इसके और मेरे गुरु पृथक् नहीं थे, मेरे पिता ही तो दोनों के गुरु थे फिर भी यह अधिक गर्व करता है। मुझ पर ईर्ष्या रखता है अतः आज चाहे जो कह बैठता है। विद्वान स्थविर, मेरे गुरु के धर्म भाई तथा जगत् में प्रसिद्ध थे, उन्होंने मुझे यह श्रुतियों का रहस्य बतलाया है। यज्ञ में मरने से जो फल होता है उसे मैंने ही आज प्रत्यक्ष दिखला दिया है फिर भी यदि तुझे विश्वास नहीं होता है तो समस्त वेद रूपा समुद्र के पारगामी राजा वसु से जो सत्य के कारण प्रसिद्ध हैं, पूछ सकते हो। यह सुनकर नारद ने कहा कि क्या दोष है वसु से पूछ लिया जावे परन्तु यह बात विचार करने के योग्य है कि यदि हिंसा, धर्म का साधन मानी जाएगी तो अहिंसा, दानशील आदि पाप के कारण हो जावेंगे। हो जावें यदि यह आपका कहना है तो मछलियाँ पकड़ने वाले आदि पापी जीवों की शुभ गति होनी चाहिए और सत्य धर्म तपश्चरण तथा ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को अधोग्रहि में जाना चाहिए।

कदाचित् आप यह कहें कि यज्ञ में पशु वध करने से धर्म होता है अन्यत्र, नहीं होता तो यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि वध दोनों ही स्थानों में एक समान दुःख का कारण है अतः उसका फल समान ही होना चाहिए। इसे कौन रोक सकता है ? कदाचित् आप यह मानते हों कि पशुओं की रचना विधाता

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

में पशु के लिए ही की है। अतः यज्ञ में पशु हिंसा करने वाले के लिए पापबन्ध नहीं होता तो यह मानना ठीक नहीं है क्योंकि यह मूर्खजन की अभिलाषा है तथा साधुजनों के द्वारा निन्दित है तथा यज्ञ के लिए ही ब्रह्मा ने पशुओं की यूटि की है यदि यह आप ठीक मानते हैं तो फिर उनका अन्यत्र उपयोग करना उचित नहीं है क्योंकि जो वस्तु जिस कार्य के लिए बनाई जाती है उसका अन्यथा उपयोग करना कार्यकारी नहीं होता। जैसे कि श्लेष्म आदि को शमन करने वाली औषधि का यदि अन्यथा उपयोग किया जाता है तो वह विपरीत फलदायी होती है ऐसे ही यज्ञ के लिए बनाये गये पशुओं से यदि क्रय-विक्रय आदि कार्य किया जाता है तो वह महान् दोष उत्पन्न करने वाला होना चाहिए।

तू वाद करना चाहता है परन्तु दुर्बल है – युक्ति बल से रहित है अतः तेरे पास आकर हम कहते हैं कि जिस प्रकार शस्त्र आदि के द्वारा प्राणियों का विघात करने वाला मनुष्य पाप से वध्य होता है उसी प्रकार मन्त्रों के द्वारा प्राणियों का विघात करने वाला भी बिना किसी विशेषता के पाप से बच्च होता है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्मा जो पशु आदि को बनाता है वह प्रगट करता है अथवा नवीन बनाता है यदि नवीन बनाता है तो आकाश के फूल आदि अस्त-पदार्थ क्यों नहीं बना देता ? यदि यह कहो कि ब्रह्मा पशु आदि को नवीन नहीं बनाता हैं किन्तु प्रगट करता है तो फिर यह कहना चाहिए कि प्रगट होने के पहले उनका प्रतिबन्धक किया था ? उन्हें प्रगट होने से रोकने वाला कौन था ? जिस प्रकार दीपक जलने के पहले अन्धकार घटादि को रोकने वाला है उसी प्रकार प्रगट होने के पहले पशुओं आदि को रोकने वाला भी कोई होना चाहिए इस प्रकार आपके सृष्टिवाद में यह व्यक्तिवाद आदर करने के योग्य नहीं है इस तरह नारद के वचन सुनकर सब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे। सब कहने लगे कि यदि राजा वसु के द्वारा तुम दोनों का विवाद विश्रान्त होता है तो उनके पास चला जावे। ऐसा कह सभा के सब लोग नारद और पर्वत के साथ स्वस्तिकावती नगर गये। पर्वत के द्वारा कही हुई यह सब जब उसकी माता ने जानी तब वह पर्वत को साथ लेकर राजा वसु के पास गई और राजा वसु के दर्शन कर कहने लगी कि यह निर्धन पर्वत तपोवन के लिए जाते समय तुम्हारे गुरु ने तुम्हारे लिए सौंपा था। आज तुम्हारी अध्यक्षता में यहाँ नारद के साथ विवाद होगा। यदि कदाचित् उस वाद में इसकी पराजय

### \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हो गयी तो फिर यमराज का मुख ही इसका शरण होगा अन्य कुछ नहीं, यह तुम निश्चित समझ लो, इस प्रकार पर्वत की माता ने राजा वसु से कहा।

राजा वसु गुरु की सेवा करना चाहता था अतः बड़े आदर से बोला कि हे माँ! इस विषय में तुम कुछ भी शंका न करो। मैं पर्वत की ही विजय कराऊँगा। इस तरह कहकर उसने पर्वत की माँ का भय दूर कर दिया। दूसरे दिन राजा वसु आकाश-स्फटिक के पायों से खड़े हुए, सिंहासन पर आरूढ़ होकर राजसभा में विराजमान था उसी समय वे सब विश्वभू-मन्त्री आदि राज सभा में पहुँचकर पूछने लगे कि आपसे पहले भी अहिंसा आदि धर्म की रक्षा करने में तत्पर रहने वाले हिमगिरी, महागिरी, समगिरी और वसुगिरी नाम के चार हंरिवंशी राजा हो गए हैं इन सबके अतीत होने पर महाराज विश्वावसु हुए और उनके बाद अहिंसा धर्म की रक्षा करने वाले आप हुए हैं। आप ही सत्यवादी हैं इस प्रकार तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। किसी भी दशा में संदेह होने पर आप विष अग्नि और तुला के समान हैं। हे स्वामिन्! आप ही विश्वास उत्पन्न करने वाले हैं। अतः हम लोगों का संशय दूर कीजिए। नारद ने अहिंसा लक्षण धर्म बतलाया है और पर्वत इसके विपरीत कहता है अर्थात् हिंसा को धर्म बतलाता है। अब उपाध्याय गुरु महाराज का जैसा उपदेश हो वैसा आप कहिए।

इस प्रकार सबलोगों ने राजा वसु से कहा। राजा वसु यद्यपि आप्त भगवान द्वारा कहे हुए धर्म तत्व को जानता था तथापि गुरुपत्नी उससे पहले ही प्रार्थना कर चुकी थी, इसके सिवाय वह महाकाल के द्वारा उत्पादित महामोह से युक्त था, दुःष्मा नामक पञ्चम काल की सीमा निकट थी और वह स्वयं परिग्रहानन्द रूप रौद्र ध्यान में तत्पर था अतः कहने लगा कि जो तत्व पर्वत ने कहा है वही ठीक है। जो वस्तु प्रत्यक्ष दिख रही है उसमें बाधा हो ही कैसे सकती है? इस पर्वत के बताए यज्ञ से ही राजा सगर अपनी पत्नी सहित स्वर्ग गया है। जो दीपक स्वयं जल रहा है – स्वयं प्रकाशमान है भला उसे दूसरे दीपक के द्वारा कौन प्रकाशित करेगा? इसलिए तुम भय छोड़ कर जो पर्वत कह रहा है वही करो, वही स्वर्ग का साधन है इस प्रकार हिंसानन्दी और मृषानन्दी रौद्र ध्यान के द्वारा राजा वसु ने नरकायु का बन्ध कर लिया तथा असत्य भाषण के पाप और लोकनिन्दा से नहीं डरने वाले राजा वसु ने उक्त वचन कहे।

### \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

राजा वसु की यह बात सुनकर नारद और तपस्वी कहने लगे “कि आश्चर्य है कि राजा के मुख से ऐसे भयंकर शब्द निकल रहे हैं इसका कोई विषम कारण अवश्य है।” उसी समय आकाश गरजने लगा, नदियों का प्रवाह उल्टा बहने लगा, तालाब शीघ्र ही सूख गये, लगातार रक्त की वर्षा होने लगी, सूर्य की किरणें फीकी पड़ गई, समस्त दिशायें मलिन हो गयी, प्राणी भय से विह्वल होकर काँपने लगे, बड़े जोर का शब्द करती हुई पृथ्वी फटकर दो टूक हो गई और राजा वसु का सिंहासन उस महार्गत में निमग्न हो गया। यह देख आकाश मार्ग में खड़े हुए देव और विद्याधर कहने लगे कि हे बुद्धिमान् राजा वसु! सनातन मार्ग का उल्लंघन कर धर्म का विध्वंस करने वाले मार्ग का निरूपण मत करो। पृथ्वी में सिंहासन घुसने से पर्वत और राजा वसु का मुख फीका पड़ गया। यह देख महाकाल के किंकर तापसियों का वेष रखकर कहने लगे कि आप लोग भय को प्राप्त न हों यह कहकर उन्होंने वसु का सिंहासन अपने आप के द्वारा उठाकर लोगों को दिखला दिया। राजा वसु यद्यपि सिंहासन के साथ नीचे धूंस गया था तथापि जोर देकर कहने लगा कि मैं तत्वों का जानकार हूँ अतः इस प्रकार उपद्रव से कैसे डर सकता हूँ? मैं फिर भी कहता हूँ कि पर्वत के वचन ही सत्य है। इतना कहते ही वह कण्ठ पर्यन्त पृथ्वी में धूंस गया। उस समय साधुओं ने – तापसियों ने बड़े यत्न से यद्यपि प्रार्थना की थी कि हे राजन्! तेरी यह अवस्था असत्य भाषण से ही हुई है इसलिए इसे छोड़ दे तथापि वह अज्ञानी यज्ञ को ही सन्मार्ग बतलाता रहा।

अन्त में पृथ्वी ने उसे कुपित होकर ही मानों निगल लिया और वह मरकर सातवें नरक गया। तदनन्तर वह असुर जगत् को विश्वास दिलाने के लिये राजा सगर और वसु का सुन्दर रूप धारण कर कहने लगा कि हम दोनों नारद का कहा न सुनकर यज्ञ की श्रद्धा से ही स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार कहकर वह अदृश्य हो गया। इस घटना से लोगों को बहुत शोक और आश्चर्य हुआ। उनमें कोई कहता था कि राजा सगर स्वर्ग गया है और कोई कहता था कि नहीं, नरक गया है। इस तरह विवाद करते हुए विश्वभू मन्त्री अपने घर चला गया। तदनन्तर प्रयाग में उसने राजसूय यज्ञ किया। इस पर महापुर आदि नगरों के राजा मनुष्यों की मूढ़ता की निन्दा करने लगे और परम ब्रह्म परमात्मा के द्वारा बतलाये मार्ग में तल्लीन होते हुए थोड़े दिन तक यों ही ठहरे रहे।

### \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इस समय नारद के द्वारा ही धर्म की मर्यादा स्थिर रह सकी है इसलिए सब लोगों ने उसकी बहुत प्रशंसा की और उसके लिए गिरितट नाम का नगर प्रदान किया। तापसी लोग भी दया धर्म का विद्वांस देख बहुत दुःखी हुए और कलिकाल की महिमा समझते हुए अपने-अपने आश्रमों में चले गए।

तदनन्तर किसी दिन, दिनकरदेव नाम का विद्याधर आया, नारद ने उससे बड़े प्रेम से कहा कि इस समय पर्वत समस्त प्राणियों के विरुद्ध आचरण कर रहा है इसे आपको रोकना चाहिए। उत्तर में विद्याधर ने कहा कि अवश्य रोकूँगा। ऐसा कहकर उसने अपनी विद्या से गंधार पन्नग नामक नागकुमार देवों को बुलाया और विघ्न करने का सब प्रपञ्च उन्हें यथा योग्य बतला दिया। नागकुमार देवों ने भी संग्राम में दैत्यों को मार भगाया और यज्ञ में विघ्न मचा दिया। विश्वभू मन्त्री और पर्वत यज्ञ में होने वाला विघ्न देखकर शरण की खोज करने लगे। अनायास ही उन्हें सामने खड़ा हुआ महाकाल असुर दिख पड़ा। दिखते ही उन्होंने उससे यज्ञ में विघ्न आने का सब समाचार कह सुनाया उसे सुनते ही महाकाल ने कहा कि हम लोगों के साथ द्वेष रखने वाले नागकुमार देवों ने यह उपद्रव किया है। नागविद्याओं का निरूपण विद्यानुवाद में हुआ है। जिन बिम्बों के ऊपर इनके विस्तार का निषेध बतलाया है अर्थात् जहाँ जिनबिम्ब होते हैं वहाँ इनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। इसलिए तुम दोनों चारों दिशाओं में जिनेन्द्र के आकार की सुन्दर प्रतिमाँयें रखकर उनकी पूजा करो और तदनन्तर यज्ञ की विधि प्रारम्भ करो।

इस प्रकार महाकाल ने यह उपाय कहा और उन दोनों ने उसे यथा विधि किया। तदनन्तर विद्याधरों का राजा दिनकर देव यज्ञ में विघ्न करने की इच्छा से आया और जिनप्रतिमायें देखकर नारद से कहने लगा कि यहाँ मेरी विद्यायें नहीं चल सकतीं ऐसा कहकर वह अपने स्थान पर चला गया। इस तरह वह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ और विश्वभू मन्त्री तथा पर्वत दोनों ही आयु के अन्त में मरकर चिरकाल के लिये नरक में दुःख भोगने लगे।

अन्त में महाकाल असुर अपना अभिप्राय पूरा कर अपने असली रूप में प्रकट हुआ और कहने लगा कि मैं पूर्व भव में पोदनपुर का राजा मधुपिंगल था। मैंने ही इस तरह सुलसा के निमित्त यह बड़ा भारी पाप किया है। जिनेन्द्र भगवान ने जिस अहिंसा लक्षण धर्म का निरूपण किया है, धर्मात्माओं को उसी

### \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

का पालन करना चाहिए इतना कह वह अन्तर्हित हो गया और दया से आर्द्धबुद्धि लोक उसने अपनी दुष्ट-चेष्टाओं का प्रायश्चित्त स्वयं ग्रहण किया। मोहवश किए हुए पाप कर्म से निवृत्त होना ही प्रायश्चित्त कहलाता है। हिंसा धर्म में प्रवृत्त रहने वाले विश्वभू आदि समस्त लोग पाप के कारण नरकगति में गये और पाप से डरने वाले कितने ही लोगों ने सम्यग्ज्ञान के धारक मुनियों के द्वारा कहा धर्म सुनकर पर्वत के द्वारा कहा मिथ्यामार्ग स्वीकृत नहीं किया और जिनका संसार दीर्घ था ऐसे कितने ही लोग उसी मिथ्यामार्ग में स्थित रहे।

## हिन्दू धर्म में वर्णित हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ

प्राचीन काल की बात है, जब इन्द्र का यज्ञ हो रहा था और सब महर्षि मन्त्रोच्चारण कर रहे थे, ऋत्विज लोग अपने-अपने कर्मों में लगे थे, यज्ञ का काम बड़े समारोह और विस्तार के साथ चल रहा था, उत्तम गुणों से युक्त आहुतियों का अग्नि में हवन किया जा रहा था, देवताओं का आद्वान हो रहा था, बड़े-बड़े महर्षि खड़े थे, ब्राह्मण लोग बड़ी प्रसन्नता के साथ वेदोक्त मन्त्रों का उत्तम स्वर से पाठ करते थे और शीघ्रकारी उत्तम अवर्युग्ण बिना किसी धकावट के अपने कर्तव्य का पालन कर रहे थे। इतने ही में पशुओं के आलम्भ का समय आया। महाराज! जब पशु पकड़ लिये गये, तब महर्षियों को उन पर बड़ी दया आयी।

ततो दीनान् पशून् दृष्ट्वा ऋषयस्ते तपोधनाः ।

ऊचुः शक्रं समागम्य नायं यज्ञविधिः शुभः ॥ (12)

उन पशुओं की दयनीय अवस्था देखकर वे तपोधन ऋषि इन्द्र के पास जाकर बोले - 'यह जो यज्ञ में पशुवध का विधान है, यह शुभकारक नहीं है।

अपरिज्ञानमेतत् ते महान्तं धर्ममिच्छतः ।

न हि यज्ञे पशुणा विधिदृष्ट्याः पुरंदर ॥ (13)

'पुरंदर! आप महान् धर्म की इच्छा करते हैं तो भी जो पशुवध के लिये उद्यत हो गये हैं, यह आपका अज्ञान ही है, क्योंकि यज्ञ में पशुओं के वध

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

का विधान शास्त्र में नहीं देखा गया है।

धर्मोपद्यातक स्त्वेष समारम्भस्तव प्रभो।

नायं धर्मकृतो यज्ञो न हिंसा धर्म उच्यते ॥ (14)

प्रभो! आपने जो यज्ञ का समारम्भ किया है, यह धर्म को हानि पहुँचाने वाला है। यह यज्ञ धर्म के अनुकूल नहीं है क्योंकि हिंसा को कहाँ भी धर्म नहीं कहा गया है।

आगमेनैव ते यज्ञं कुर्वन्तु यदि चेच्छसि ।

विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मस्ते सुमहान् भवेत् ॥ (15)

यदि आपकी इच्छा हो तो ब्राह्मण लोग शास्त्र के अनुसार ही इस यज्ञ का अनुष्ठान करें। शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ करने से आपको महान् धर्म की प्राप्ति होगी।

यज वीजैः सहस्राक्ष त्रिवर्षपरमोषितः ।

एष धर्मो महान् शक्र महागुणफलोदयः ॥ (16)

सहस्र नेत्रधारी इन्द्र ! आप तीन वर्ष के पुराने बीजों (जौं, गेहू आदि अनाजों) से यज्ञ करें। यही महान् धर्म है और महान् गुणकारक फल की प्राप्ति कराने वाला है।

तत्वदर्शी ऋषियों के कहे हुए इस वचन को इन्द्र ने अभिमानवश नहीं स्वीकार किया। वे मोह के वशीभूत हो गये थे।

इन्द्र के उस यज्ञ में जुटे हुए तपस्वी लोगों में इस प्रश्न को लेकर महान् विवाद खड़ा हो गया। भारत! एक पक्ष कहता था कि जंगम पदार्थ (पशु आदि) के द्वारा यज्ञ करना चाहिये और दूसरा पक्ष कहता था कि स्थावर वस्तुओं (अन्न-फल आदि) के द्वारा यज्ञ करना उचित है।

भरतनन्दन ! वे तत्वदर्शी ऋषि जब इस विवाद से बहुत भिन्न हो गये, जब उन्होंने इन्द्र के साथ सलाह लेकर इस विषय में राजा उपरिचर वसु से पूछा – महामते ! हम लोग धर्म विषयक संदेह में पड़े हुए हैं। आप हमसे सच्ची बात बताइये। महाभाग नृपत्रेष्ठ ! यज्ञों के विषय में शास्त्र का मत कैसा है ? मुख्य-मुख्य पशुओं द्वारा यज्ञ कर लेना चाहिये अथवा बीजों एवं रसों द्वारा।

यह सुनकर राजा वसु ने उन दोनों पक्षों के कथन में कितना सार या

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

असार है, इसका विचार न करके यों ही बोल दिया कि ‘जब जो वस्तु मिल जाये, उसी से यज्ञ कर लेना चाहिये’।

इस प्रकार कहकर असत्य निर्णय देने के कारण चेदिराज वसु को रसातल में जाना पड़ा।

अतः कोई सन्देह उपस्थित होने पर स्वयम्भू भगवान प्रजापति को छोड़कर अन्य किसी बहुज्ञ पुरुष को भी अकेले कोई निर्णय नहीं देना चाहिये। उस अशुद्ध बुद्धि वाले पापी पुरुष के दिये हुए दान कितने ही अधिक क्यों न हों, वे सब के सब अनाहत होकर नष्ट हो जाते हैं। अधर्म में प्रवृत्त हुए दुर्बुद्धि पुरात्मा हिंसक मनुष्य जो दान देते हैं, उससे इहलोक या परलोक में उनकी कीर्ति नहीं होती।

अन्यायोपगतं द्रध्यमभीक्षणं यो ह्यपण्डितः ।

धर्मभिशंकी यजते न स धर्मफलं लभेत् ॥ (27)

जो मूर्ख अन्यायोपार्जित धन का बारबार संग्रह करके धर्म के विषय में संशय रखते हुए यजन करता है, उसे धर्म का फल नहीं मिलता।

धर्मवैतंसिको यस्तु पापात्मा पुरुषाधमः ।

ददाति दानं विप्रेभ्यो लोक विश्वास कारणम् ॥ 28

जो धर्मध्वजी, पापात्मा एवं नराधम है, वह लोक में अपना विश्वास जमाने के लिये ब्राह्मणों को दान देता है, धर्म के लिये नहीं।

पापेन कर्मणा विप्रो धनं प्राप्य निरंकुशः ।

रागमोहान्वितः सोऽन्ते कलुषां गतिमश्नुते ॥ (29)

जो ब्राह्मण, पापकर्म से धन पाकर उच्छृंखल हो राग और मोह के वशीभूत हो जाता है, वह अन्त में कलुषित गति को प्राप्त होता है।

अपि संचयबुद्धिः लोभमोहवशं गतः ।

उद्देजयति भूतानि पापेनाशुद्धबुद्धिना ॥ (30)

वह लोभ और मोह के वश में पड़ कर संग्रह करने की बुद्धि को अपनाता है। कृपणतापूर्वक पैसे बटोरने का विचार रखता है। फिर बुद्धि को अशुद्ध कर देने वाले पापाचार के द्वारा प्राणियों को उद्वेग में डाल देता है।

एवं लब्ध्वा धनं मोहाद् योहि दद्याद् यजेत वा ।

न तस्य स फलं प्रेत्य भुद्भक्ते पापधनागमात् ॥ (31)

\*\*\*\*\* 48 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इस प्रकार जो मोहवश अन्याय से धन का उपार्जन करके उसके द्वारा दान या यज्ञ करता है, वह मरने के बाद भी उसका फल नहीं पाता, क्योंकि वह धन पाप से मिला हुआ होता है।

उड़छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ।

दानविभवतो दत्त्वानराः स्वर्यान्तिधार्मिकाः ॥(32)

तपस्या के धनी धर्मात्मा पुरुष उज्ज्ञ (बीने हुए अन्न), फल, मूल, शाक और जलपात्र का ही अपनी शक्ति के अनुसार दान करके स्वर्गलोक में चले जाते हैं।

एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा ।

ब्रह्मचर्ये तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ॥ (33)

सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत् सानन्दनम् ।

श्रुयन्ते हि पुरा वृत्ता विश्वामित्रादयो नृपाः ॥ (34)

यही धर्म है, यही महान् योग है, दान, प्राणियों पर दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, करुणा, धृति और क्षमा – ये सनातन धर्म के सनातन मूल हैं। सुना जाता है कि पूर्व काल में विश्वामित्र आदि नरेश इसी से सिद्धि को प्राप्त हुए थे।

विश्वामित्र, असित, राजा जनक, कक्षसेन, आर्षिषेण और भूपाल सिन्धुद्वीप पथे तथा अन्य बहुत से राजा तथा तपस्वी न्यायोपार्जित धन के दान और सत्यभाषण द्वारा परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। भरतनन्दन ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जो भी तप का आश्रय लेते हैं, वे दानधर्मरूपी अग्नि से तपकर सुवर्ण के समान शुद्ध हो स्वर्ग लोक को जाते हैं।

(महाभारत, आश्वमेधिक पर्व, पृ. 6302)

उपरोक्त कथन महाभारत के शान्तिपर्व में पाया जाता है। यथा—

राजा वसु भी यज्ञ पूरा करके प्रजा का पालन करने लगे। एक बार ब्रह्मशाप से उन्हें स्वर्ग से भ्रष्ट होना पड़ा था। उस समय वे पृथ्वी के भीतर रसातल में समा नृपत्रेष्ठ ! सदा धर्म पर अनुराग रखने वाले सत्यधर्म – परायण राजा उपस्थित भूमि के भीतर प्रवेश करके भी निरन्तर नारायण – मन्त्र का जप करते हुए भी उन्हीं की आराधना में तत्पर रहते थे। अतः उन्हीं की कृपा से वे पुनः ऊपर को उठे और भूतल से ब्रह्मलोक में जाकर उन्होंने परम गति प्राप्त कर ली। अनायास ही उन्हें निष्ठावानों की यह उत्तम गति प्राप्त हो गयी।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

युधिष्ठिर ने पूछा – पितामह ! राजा वसु जब भगवान के अत्यन्त भक्त और महान् पुरुष थे, तब वे स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पाताल में कैसे प्रविष्ट हुए?

भीष्मजी ने कहा – भरतनन्दन ! इस विषयमें ज्ञानीजन ऋषियों और देवताओं के संवादरूप इस प्राचीन इतिहास को उद्धृत किया करते हैं।

अजेन यष्टव्यमिति प्राहुर्देवा द्विजोत्तमान् ।

सचच्छागोऽप्यजोङ्गेयोनान्यः पशुरितिस्थितिः ॥(3)

‘अज के द्वारा यज्ञ करना चाहिये ऐसा विधान है !’ ऐसा कहकर देवताओं ने वहाँ आये हुए सभी श्रेष्ठ ब्रह्मर्षियों से कहा – ‘यहाँ अज का अर्थ बकरा समझना चाहिये, दूसरा पशु नहीं, ऐसा निश्चय है।’

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः ।

अजसंज्ञानि बीजानि चागं, नो हन्तुर्महथ ॥ (4)

ऋषियों ने कहा – देवताओं ! यज्ञों में बीजों द्वारा यज्ञ करना चाहिये, ऐसी वैदिक श्रुति है। बीजों का ही नाम अज है, अतः बकरे का वध करना हमें उचित नहीं है।

नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ।

इदं कृतयुगं श्रेष्ठ वध्येत वै पशुः ॥ (5)

देवताओं ! जहाँ कहीं भी यज्ञ में पशु का वध हो, वह सत्यरुपों का धर्म नहीं है। यह श्रेष्ठ सत्ययुग चल रहा है। इसमें पशु का वध कैसे किया जा सकता है ?

भीष्म जी कहते हैं – राजन् ! इस प्रकार जब ऋषियों का देवताओं के साथ संवाद चल रहा था उसी समय नृपत्रेष्ठ वसु भी उस मार्ग से आ निकले और उस स्थान पर पहुँच गये।

श्रीमान् राजा उपशिष्ठ अपनी सेना और वाहनों के साथ आकाश मार्ग से चलते थे। उन अन्तरिक्षचारी वसु को सहसा आते देख ब्रह्मर्षियों ने देवताओं से कहा – ‘ये नरेश हम लोगों का संदेह दूर कर देंगे, क्योंकि ये यज्ञ करनेवाले, दानपति, श्रेष्ठ तथा सम्पूर्ण भूतों के हितैषी एव प्रिय हैं।’ ‘ये महान् पुरुष वसु शास्त्र के विपरीत वचन कैसे कह सकते हैं ?’ ऐसी सम्मति करके देवताओं और ऋषियों ने एक साथ राजा वसु के पास आकर अपना प्रश्न उपरिथित किया।

‘राजन् ! किसके द्वारा यज्ञ करना चाहिये ? बकरे के द्वारा अथवा अन्न

\*\*\*\*\* 50 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

द्वारा ? हमारे इस संदेह का आप निवारण करें। हम लोगों की राय में आप ही प्रामाणिक व्यक्ति हैं। तब राजा वसु ने हाथ जोड़कर उन सबसे पूछा - 'विप्रवरों ! आप लोग सच-सच बताइये, आप लोगों में किस पक्ष को कौन सा मत अभीष्ट है ? कौन अज का अर्थ बकरा मानता है और कौन अन्न ?

**धान्यैर्घट्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप ।**

**देवानां तु पशुः पक्षो मतो राजन् वदस्व नः ॥ (12)**

ऋषि बोले - नरेश्वर ! हम लोगों का पक्ष यह है कि अन्न से यज्ञ करना चाहिये तथा देवताओं का पक्ष यह है कि छाग नामक पशु के द्वारा यज्ञ होना चाहिये। राजन् ! अब आप हमें अपना निर्णय बताइये ।

**देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् ।**

**छागेनाजेन यष्ट्यमेवभुक्तं वचस्तदा ॥ (13)**

भीष्म भी कहते हैं - राजन् ! देवताओं का मत जानकर राजा वसु ने उन्हीं का पक्ष लेकर कह दिया कि अज का अर्थ है, छाग (बकरा), अतः उसी के द्वारा यज्ञ करना चाहिये ।

यह सुनकर वे सभी सूर्य के समान तेजस्वी ऋषि कुपित हो उठे और विमान पर बैठकर देवपक्ष की बात कहने वाले वसु से बोले - राजन् ! तुमने यह जानकर भी कि अज का अर्थ अन्न है, देवताओं का पक्ष लिया है, इसलिये स्वर्ग से नीचे गिर जाओ। आज से तुम्हारी आकाश में विचरने की शक्ति नष्ट हो गयी। हमारे शाप के आघात से तुम पृथ्वी को भेदकर पाताल में प्रवेश करोगे। 'नरेश्वर ! तुमने यदि वेद और सूत्रों के विरुद्ध कहा हो तो हमारा यह शाप अवश्य लागू हो और यदि हम शास्त्र विरुद्ध वचन कहते हों तो हमारा पतन हो जाये'।

राजन् ! ऋषियों के इतना कहते ही उसी क्षण राजा उपरिचर आकाश से नीचे आ गये और तत्काल पृथ्वी के विवर में प्रवेश कर गये।

(महाभारत, शान्तिपर्व पृ. 5340, 5341)

अहिंसा की महिमा का वर्णन करते हुए वेद को व्यवस्थित रूप से सम्पादन करने वाले महर्षि वेदव्यास ने महाभारत के अनुशासन पर्व में निम्न प्रकार कहा है -

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किंचन विद्यते ।

तस्माद् दयां नरः कुर्याद् यथाऽत्मनि तथापरे ॥ (8)

(पृष्ठ 586) (अनुशासन पर्व) (श्री महाभारते)

जगत् में अपने प्राणों से अधिक प्रिय दूसरी कोई वस्तु नहीं है इसलिए मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया चाहता है, उसी तरह दूसरों पर भी दया करे।

शुक्राच्य तात् सम्भूतिमाँसस्येहं न संशयः ।

भक्षणे तु महान् दोषो निवृत्या पुण्यमुच्यते ॥ (9)

तात् ! मांस-भक्षण करने में महान् दोष है क्योंकि मांस की उत्पत्ति वीर्य से होती है, इसमें संशय नहीं है। अतः उससे निवृत्त होने में ही पुण्य बताया गया है।

न ह्यतः सदृशं किं चिदिह लोके परत्र च ।

यत् सर्वेष्विह भूतेसु दया कौरव नन्दन ॥ (10)

कौरव नन्दन ! इस लोक और परलोक में इसके समान दूसरा कोई पुण्य कार्य नहीं है कि इस जगत् में समस्त प्राणियों पर दया की जाय।

न भयं विद्यते जातु नरस्येह दयावतः ।

दयावतामिमे लोकाः परे चापि तपस्विनाम् ॥ (11)

इस जगत् में दयालु मनुष्य को कभी भय का सामना नहीं करना पड़ता। दयालु और तपस्वी पुरुषों के लिए इहलोक और परलोक दोनों ही सुखद होते हैं।

अहिंसा लक्षणो धर्म इति धर्मविदो विदुः ।

यद हिंसात्मकं कर्म तत् कुर्यादात्मवान् नरः ॥ (12)

धर्मज्ञ पुरुष यह जानते हैं कि अहिंसा ही धर्म का लक्षण है। मनस्वी पुरुष वही कर्म करे जो अहिंसात्मक हो।

अभय सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।

अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुय ॥ (13)

जो दयापरायण पुरुष सम्पूर्ण भूतों को अभयदान देता है, उसे भी सब प्राणी अभयदान देते हैं। ऐसा हमने सुन रखा है।

क्षतं च स्खलितं चैव पतितं कृष्टमाहमतम् ।

सर्वभूतानि रक्षन्ति समेषु विषमेषु च ॥ (14)

वह धायल हो, लड़खड़ाता हो, गिर पड़ा हो, पानी के बहाव में खिंचकर

\*\*\*\*\* 51 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* 52 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

बहा जाता हो, आहत हो अथवा किसी भी सम विषम अवस्था में पड़ा हो, सब प्राणी उसकी रक्षा करते हैं ।

नैनं व्यात्मृगान्धन्ति न पिशाचा न राक्षसा ।  
मुच्यते भयकालेषु मोक्षयेद् यो भये परान् ॥ (15)

जो दूसरों को भय से छुड़ाता है, उसे न हिंसक पशु मारते हैं और न पिशाच तथा राक्षस ही उस पर प्रहार करते हैं । वह भय का अवसर आने पर उससे मुक्त हो जाता है ।

प्राणदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ।  
न ह्यात्मनः प्रियतरं किं चिदस्तीह निश्चितम् ॥ (16)

प्राणदान से बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा । अपने आत्मा से बढ़कर प्रियतर वस्तु दूसरी कोई नहीं है । यह निश्चित बात है ।

अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ।  
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायति वेष्युः ॥ (17)

भरतनन्दन ! किसी भी प्राणी को मृत्यु अभीष्ट नहीं है, क्योंकि मृत्युकाल में सभी प्राणियों का शरीर तुरन्त काँप उठता है ।

जातिजन्मजरादुःखैर्नित्यं संसारसागरे ।  
जन्तवः परिवर्तन्ते मरणादुद्विजन्ति च ॥ (18)

इस संसार समुद्र में समस्त प्राणी सदा गर्भवास, जन्म और बुद्धापा आदि के दुःखों से दुःखी होकर चारों ओर भटकते रहते हैं । साथ ही मृत्यु से उद्धिग्न रहा करते हैं ।

गर्भवासेयु पच्यन्ते क्षाराम्लकटुकै रसैः ।  
मूत्रस्वेदपुरीषाणां परुषैर्भुशदारूर्णैः ॥ (19)

गर्भ में आये हुए प्राणी मलमूत्र और पसीनों के बीच में रहकर खारे, खट्टे और कड़वे आदि रसों से, जिनका स्पर्श अत्यन्त कठोर और दुःखदायी होता है, पकते रहते हैं, जिससे उन्हें बड़ा भारी कष्ट होता है ।

जाताश्चाप्यवशास्त्रं च्छिद्यमानाः पुनः पुनः ।  
पाच्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः ॥ (20)

मांस लोलुप जीव जन्म लेने पर भी परवश होते हैं । वे बार-बार शस्त्रों से काटे और पकाये जाते हैं उनकी यह बेवसी प्रत्यक्ष देखी जाती है ।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः ।

आक्रम्य मार्यमाणाश्च भ्राम्यन्ते वै पुनः पुनः ॥ (21)

वे अपने पापों के कारण कुम्भीपाक नरक में रांधे जाते और भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म लेकर गला घोट-घोट कर मारे जाते हैं । इस प्रकार उन्हें बारम्बार संसार चक्र में भटकना पड़ता है ।

नात्मनोऽस्ति प्रियतरः पृथिवीमनुसृत्य ह ।

तस्मात् प्राणिषु सर्वेषु दयावानात्मवान् भवेत् ॥ (22)

इस भूमण्डल पर अपने आत्मा से बढ़कर कोई प्रिय वस्तु नहीं है इसलिए सब प्राणियों पर दया करे और सबको अपना आत्मा ही समझे ।

सर्वमांसानि यो राजन् यावज्ञीवं न भक्षयेत् ।

स्वर्गं स विपुलं स्थानं प्राप्नुयान्नात्र संशयः ॥ (23)

राजन् ! जो जीवनभर किसी भी प्राणी का मांस नहीं खाता । वह स्वर्ग में श्रेष्ठ एवं विशाल स्थान पाता है, इसमें संशय नहीं ।

ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीतितैषिणाम् ।

भक्षयन्ते तेऽपि भूतैस्तैरिति ये नास्ति संशयः ॥ (24)

जो जीवित रहने की इच्छा वाले प्राणियों के मांस को खाते हैं, वे दूसरे जन्म में उन्हीं प्राणियों द्वारा भक्षण किये जाते हैं । इस विषय में मुझे संशय नहीं है ।

मां स भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम् ।

एतन्मांसस्य मांसत्वमनुबुद्ध्यस्व भारत ॥ (25)

भरतनन्दन ! (जिसका वध किया जाता है, वह प्राणी कहलाता है 'मांस भक्षयते यस्माद् भक्षयिष्ये तमप्यहम्' अर्थात् 'वह मुझे खाता है तो कभी मैं भी उसे खाऊँगा' यही मांस का मांसत्व है – इसे ही मांस शब्द का तात्पर्य समझो ।

घातको वध्यते नित्यं तथा वध्यति भक्षिता ।

आक्रोष्टा क्रुद्धये राजंस्तथा द्वेष्यत्वमानुते ॥ (26)

राजन् ! इस जन्म में जिस जीव की हिंसा होती है, वह दूसरे जन्म में सदा ही अपने घातक का वध करता है । फिर भक्षण करने वाले को ही मार डालता है । जो दूसरों की निन्दा करता है, वह स्वयं भी दूसरों के क्रोध और द्वेष का पात्र होता है ।

\*\*\*\*\* 54 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

येन येन शरीरेण यद् यत् कर्म करोति यः ।

तेन तेन शरीरेण तत्त फलमुपाश्नुते ॥ (27)

जो जिस-जिस शरीर से जो-जो कर्म करता है, वह उस शरीर से भी उस-उस कर्म का फल भोगता है ।

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः ।

अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥ (28)

अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम तपस्या है ।

अहिंसा परमो यज्ञस्थाहिंसा परं फलम् ।

अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥ (29)

अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है ।

सर्वं यज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽप्यनुतम् ।

सर्वदानफलं वापि नैतत्तुत्यमहिंसया ॥ (30)

सम्पूर्ण यज्ञों में जो दान किया जाता है, समस्त तीर्थों में जो गौता लगाया जाता है तथा सम्पूर्ण दानों का जो फल है – यह सब मिलकर भी अहिंसा के बराबर नहीं हो सकता ।

अहिंस्त्रयमहिंस्त्रो यजते सदा ।

अहिंस्त्रः सर्वभूतानां यथा माता यथा पिता ॥ (31)

जो हिंसा नहीं करता, उसकी तपस्या अक्षय होती है वह सदा यज्ञ करने का फल पाता है । हिंसा न करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों के माता-पिता के समान है ।

एतत् फलमहिंसाया भूयश्च कुरुपूँगव ।

न हि शक्या गुणा वक्तुमपि वर्षशतेरपि ॥ (32)

कुरुश्रेष्ठ ! यह अहिंसा का फल है । यही क्या, अहिंसा का तो इससे भी अधिक फल है । अहिंसा से होने वाले लाभों का सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता ।

(श्री महाभारते – 6) (अनुशासन पर्वणि) (पृ. 5860–5862)

महाभारत में अन्यत्र भी इसका वर्णन पाया जाता है । यथा –

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हि॒रण्यदा॒नैर्गौ॒दा॒नैर्भू॒ मि॒दा॒नै॒श्च सर्वशः ।

मांसस्याभक्षणे धर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः ॥ (41)

‘सुवर्णदान’, गोदान और भूमिदान करने से जो धर्म प्राप्त होता है, मांस का भक्षण न करने से उसकी अपेक्षा भी विशिष्ट धर्म की प्राप्ति होती है । यह हमारे सुनने में आया है । (अनुशासन पर्व पृ. 5857)

भक्षयित्वापि यो मांसं पश्चादपि निवर्तते ।

तस्यापि सुमहान् धर्मो यः पापाद् विनिवर्तते ॥ (44)

जो पहले मांस खाने के बाद फिर उससे निवृत्त हो जाता है, उसको भी अत्यन्त महान् धर्म की प्राप्ति होती हैं, क्योंकि वह पाप से निवृत्त हो गया है ।

इदमन्यत् वक्ष्यामि प्रमाणं विधिनिर्मितम् ।

पुराणमृषिभिर्जुष्टं वेदेषु परिनिष्ठतम् ॥ (46)

अब मैं इस विषय में दूसरा प्रमाण बता रहा हूँ जो साक्षात् ब्रह्मा जी के द्वारा प्रतिपादित, पुरातन ऋषियों द्वारा सेवित तथा वेदों में प्रतिष्ठित है ।

प्रवृत्ति लक्षणो धर्मः प्रजार्थिमिरुदाहुतः ।

यथोक्तं राजाशार्दूलं न तु तन्मोक्षकाङ्गिक्षणाम् ॥ (47)

नृपत्रेष्ठ ! प्रजार्थी पुरुषों ने प्रवृत्ति रूप धर्म का प्रतिपादन किया है, परन्तु वह मोक्ष की अभिलाषा रखने वाले विरक्त पुरुषों के लिए अभीष्ट नहीं हैं ।

य इच्छेत् पुरुषोऽत्यन्तमात्मानं निरूपद्रवम् ।

स वर्जयेत् मांसानि प्राणिनामिह सर्वशः ॥ (48)

जो मनुष्य अपने आप को अत्यन्त उपद्रव रहित बनाये रखना चाहता हो, वह इस जगत् में प्राणियों के मांस का सर्वथा परित्याग कर दे ।

हिंसात्मक यज्ञ का निर्णय देने का फल –

श्रूयते हि पुरा कल्पे नृणां वीहिमयः पशुः ।

यनायजन्त्य यज्वानः पुण्यलोकपरायणाः ॥ (49)

सुना है, पूर्वकल्प में मनुष्यों के यज्ञ में पुरोडाश आदि के रूप में अन्नमय पशु का ही उपयोग होता था । पुण्यलोक की प्राप्ति के साधनों में लगे रहने वाले याज्ञिक पुरुष उस अन्न के द्वारा ही यज्ञ करते थे ।

ऋषिभिः संशयं पृष्ठो वसुश्चेदिपतिः पुरा ।

अभक्ष्यमपि मांसं यः प्राह भक्ष्यमिति प्रभो ॥ (50)

\*\*\*\*\* 55 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* 56 \*\*\*\*\*

प्रभो ! प्राचीन काल में ऋषियों ने, चेदिराज वसु से अपना संदेह पूछा था । उस समय वसु ने मांस को भी जो सर्वथा अभक्ष्य है, उसे भक्ष्य बना दिया ।

**आकाशादवनिं प्राप्तस्ततः स पृथिवीपतिः ।**

**एतदेव पुनश्चोक्त्वा विवेश धरणीतलम् ॥ (51)**

उस समय आकाशचारी राजा वसु अनुचित निर्णय देने के कारण आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े । तदनन्तर पृथ्वी पर भी यही निर्णय देने के कारण वे पाताल में समा गये ।

## यज्ञमें हिंसा की निन्दा, और अहिंसा की प्रशंसा

युधिष्ठिर ने पूछा – पितामह ! यज्ञ और तप तो बहुत हैं और वे सब एकमात्र भगवत्प्रीति के लिए किए जा सकते हैं, परन्तु उनमें जिस यज्ञ का प्रयोजन केवल धर्म हो, स्वर्ग सुख अथवा धन की प्राप्ति न हो, उसका सम्पादन कैसे होता है ।

भीष्मजी ने कहा – युधिष्ठिर ! पूर्वकाल में उच्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले एक ब्राह्मण का यज्ञ के सम्बन्ध में जैसा वृत्तान्त है और जिसे नारदजी ने मुझसे कहा था, वही प्राचीन इतिहास में यहाँ तुम्हें बता रहा हूँ ।

नारदजी ने कहा – जहाँ धर्म की ही प्रधानता है उस उत्तम राष्ट्र विदर्भ में कोई ब्राह्मण ऋषि निवास करता था । वह कटे हुए खेत या खिलिहान से अन्न के बिखरे हुए दानों को बीन लाता और उसीं से जीवन-निर्वाह करता था । एक बार उसने यज्ञ करने का निश्चय किया । जहाँ वह रहता था, वहाँ अन्न के नाम पर सावाँ मिलता था । दाल बनाने के लिए सूर्यपर्णी मिलती थी और शाक भाजी के लिए सुवर्चला (ब्राह्मणी लता) तथा अन्य प्रकार के तिक्त एवं रसहीन शाक उपलब्ध होते थे, परन्तु ब्राह्मण की तपस्या से उपर्युक्त सभी वस्तुएँ सुखादु हो गयी थीं । पर तब युधिष्ठिर ! उस ब्राह्मण ने वन में तपस्या द्वारा सिद्धि लाभ करते समस्त प्राणियों में से किसी की भी हिंसा न करते हुए मूल और फलों द्वारा भी स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले यज्ञ का अनुष्ठान किया । उस ब्राह्मण के एक पत्नी थी, जिसका नाम था पुष्करधारिणी । उसके

आचार-विचार परम पवित्र थे । वह व्रत उपवास करते-करते दुर्बल हो गयी थी । ब्राह्मण का नाम सत्य था । यद्यपि वह ब्राह्मणी अपने पति सत्य के हिंसा प्रधान यज्ञ की इच्छा प्रकट करने पर उसके अनुकूल नहीं होती थी, तो भी ब्राह्मण उसे यज्ञपत्नी के स्थान पर आग्रहपूर्वक बुला ही लाता था । ब्राह्मणी शाप से डरकर पति के स्वभाव का सर्वथा अनुसरण करती थी । ऐसा कहा जाता है कि वह मोरों की टूटकर गिरी पुरानी पाखों को जोड़कर उनसे ही अपना शरीर ढँकती थी । होता के आदेश से इच्छा न होने पर भी ब्राह्मण पत्नी ने उस यज्ञ का कार्य सम्पन्न किया । होता का कार्य पर्णाद् नाम से प्रसिद्ध एक धर्मज्ञ ऋषि करते थे । जो शुक्राचार्य के वंशज थे । उस वन में सत्य का सहवासी एक मृग था, जो वहाँ पास ही रहता था ।

एक दिन उसने मनुष्य की बोली में सत्य से कहा – ‘ब्राह्मण ! तुमने यज्ञ के नाम पर यह दुष्कर्म किया है । ‘यदि किया हुआ यज्ञ मन्त्र और अंग से हीन हो तो वह यजमान के लिये दुष्कर्म ही है । ब्राह्मणदेव ! तुम मुझे होता को सौंप दो और स्वयं निन्दारहित होकर स्वर्गलोक में जाओ’ । तदनन्तर उस यज्ञ में साक्षात् सावित्री-ने पधारकर उस ब्राह्मण को मृग की आहुति देने की सलाह दी । ब्राह्मण ने यह कहकर कि मैं अपने सहवासी मृग का वध नहीं कर सकता, सावित्री की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया । ब्राह्मण से इस प्रकार कोरा जबाब मिल जाने पर सावित्रीदेवी लौट पड़ी और यज्ञगिन में प्रविष्ट हो गयी, यज्ञ में कौनसा दुष्कर्म या त्रुटि है – यहीं देखने की इच्छा से वे आयी थी और फिर रसातल में चली गयी । सत्य सावित्री देवी की ओर हाथ जोड़कर खड़ा था । इतने ही में उस हरिण ने पुनः अपनी आहुति देने के लिये याचना की । सत्यने मृग को हृदय से लंगा लिया और बड़े प्यार से कहा – ‘तुम यहाँ से चले जाओ’ ।

तब वह हरिण आठ पग आगे जाकर लौट पड़ा और बोला – ‘सत्य ! तुम विधिपूर्वक मेरी हिंसा करो । मैं यज्ञ में वध को प्राप्त होकर उत्तम गति पा लूँगा । ‘मैंने तुम्हें दिव्यदृष्टि प्रदान की है, उससे देखो, आकाश में वे दिव्य अप्सराएँ खड़ी हैं । महात्मा गन्धर्वों के विचित्र विमान भी शोभा पा रहे हैं ।’ सत्य की आँखे बड़ी चाह से उधर ही जा लगी । उसने बड़ी देर तक वह रमणीय दृश्य देखा, फिर मृग की ओर दृष्टिपात करके हिंसा करने पर ही मुझे स्वर्गवास का सुख मिल सकता है’ यह मन ही मन निश्चय किया ।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

स तु धर्मो मृगो भूत्वा बहुवर्षोऽधितो वने ।

तस्य निष्कृतिमाधत्त न त्वसौ यज्ञसंविधिः ॥ 17 ॥

वास्तव में उस मृग के रूप में साक्षात् धर्म थे, जो मृग का शरीर धारण करके बहुत वर्षों से वन में निवास करते थे। पशुहिंसा यज्ञ की विधि के प्रतिकूल कर्म है। भगवान् धर्म ने उस ब्राह्मण का उद्धार करने का विचार किया।

तस्य तेनानुभावेन मृगहिं सात्मनस्तदा ।

तपो महत्समुच्छिन्नं तस्मादिंसा न यज्ञिया ॥ 18 ॥

मैं उस पशु का वध करके स्वर्गलोक प्राप्त करूँगा, यह सोचकर मृग की हिंसा करने के लिये उद्यत उस ब्राह्मण का महान् तप तत्काल नष्ट हो गया। इसलिये हिंसा यज्ञ के लिये हितकर नहीं है।

ततस्तं भगवान् धर्मो यज्ञं याजयत स्वयम् ।

समाधानं च भार्याया लेभे स तपसा परम् ॥ 19 ॥

तदनन्तर भगवान् धर्म ने स्वयं सत्य का यज्ञ कराया। फिर सत्य ने तपस्या करके अपनी पत्नी पुष्करधारिणी के मन की जैसी स्थिति थी, वैसा ही उत्तम समाधान प्राप्त किया (उसे यह दृढ़ निश्चय हो गया कि हिंसा से बड़ी हानि होती है, अहिंसा ही परम कल्याण का साधन है)।

अहिंसा सकलो धर्मो हिं साधर्म स्तथाहितः ।

सत्यं तेऽहं प्रवक्ष्यामि यो धर्मः सत्यवादिनाम् ॥ 20 ॥

अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है। हिंसा अर्धर्म है और अहितकारक होता है। अब मैं तुम्हें सत्य का महत्व बताऊँगा, जो सत्यवादी पुरुषों का परम धर्म है।

(महाभारत पेज नं. 4130)

यज्ञ में हिंसा की निन्दा और अहिंसा की प्रशंसा करते हुए जैनाचार्यों ने भी निम्न प्रकार से कहा है -

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः

रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल कीच ते दश ।

भा.सं. पृ. 24

मत्स्य, कूर्म वा कच्छप, कृष्ण, बुद्ध, कल्की, नरसिंह, वामन, राम, परशुराम वराह वा शूकर ले सब दस विष्णु के अवतार माने जाते हैं। इनमें

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

सबकी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक पूजा करते हैं। फिर भला बुद्धिमान पंडित आगे इन्हीं मत्स्य आदि के मांस खाने का विधान क्यों करते हैं। आगे इसी बात को दिखलाते हैं।

किडिकुम्ममच्छरुवं पडिमंकाऊणविणहु भणिऊण,  
अच्चेयणम्मि पुज्जइ गंधवस्यधूवर्दिवेहिं ।  
जो पुण चेयणवंतो विण्हू पच्चक्ख मच्छ किडिरुवो,  
सो हणिऊण य खद्धो दिण्णो पियण्णा पावेहिं ।

सूअर, कच्छप, मत्स्य इन सबकी प्रतिमा बनाकर और विष्णु मानकर गंध, अक्षत, दीप, धूप आदि से उस अचेतन प्रतिमा की पूजा करते हैं। फिर भला मत्स्य, कच्छप, सूअर आदि चैतन्य जीवों में प्रत्यक्ष विष्णु विद्यमान हैं। फिर भी उस मत्स्यादिक को और उसमें रहने वाले भगवान् विष्णु को मारकर वे पापी अपने पितरों को खाने के लिये देते हैं। यह कैसी विपरीत और आश्चर्य की बात है!

आगे भी यही बात दिखलाते हैं।

जइ देवो हणिऊवं मंसं गणिऊणं गम्मए सग्गं,  
तौ णरयं गंतव्यं अवरेणिह केण पावेण ।

यदि अपने देव को ही मारकर और उसका मांस खाकर यह जीव स्वर्ग में जाता है तो फिर अन्य ऐसे कौन से पाप हैं जिनसे यह जीव नरक जायेगा!

**भावार्थ** - अपने साक्षात् देव को मारकर उसका मांस खा जाना सबसे बड़ा पाप है। इससे बढ़कर और कोई पाप नहीं हो सकता। यदि ऐसे महापाप से भी यह जीव स्वर्ग में चला जाता है तो फिर नरक में जाने योग्य संसार भर में कोई महा पाप नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि जीवों को मारने और मांस खाने से स्वर्ग की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। ये दोनों ही काम नरक के कारण हैं लिखा भी है -

अल्पायुषो दरिद्राश्च नीचकर्मोपजीविनः,  
दुष्कुलेषु प्रसूयन्ते ये नराः मांस भोजिनः ।  
येति मनुष्यो मांसं निर्दयतेताः स्वदेह पुष्ट्यथम् ।  
याति स नरकं सततं हिंसा परिवृत्तचित्तत्वात् ॥

जो पुरुष मांस भक्षण करते हैं वे मनुष्य मरकर नीच कुल में उत्पन्न होते हैं। नीच कर्म करने वाले होते हैं। दरिद्री होते हैं और अल्प आयु वाले

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

होते हैं। जो निर्दय मनुष्य अपने शरीर को पुष्ट करने के लिये मांस भक्षण करता है उसका चित्त सदाकाल हिंसा करने में ही लगा रहता है और इसीलिये यह जीव बार-बार नरक में ही उत्पन्न होता है। आगे फिर भी यही बात दिखलाते हैं—

हणिऊण पोढ़छेलं गम्मह सग्गस्स एस वेयत्थो,  
तो सूणरा सध्वे सग्ग णियमेण गच्छन्ति ।

यदि वेद का अर्थ यही है कि मोटा तांजा बकरा मारकर खा जाने से यह जीव स्वर्ग में चला जाता है तो फिर संसार में जितने पापकर्म करने वाले हैं वे अवश्य ही स्वर्ग में चले जायेंगे।

सध्वगओ जह विष्णुं छागसरीरम्भि किं ण सो अथि,  
जं णिताजो वहियो घडप्फङ्गं तो निरुस्सासो ।

यदि विष्णु सर्वव्यापक है तो क्या वह उस मोटे ताजे बकरे के शरीर में नहीं है? अवश्य है। फिर भी गोत्रिय लोग जिस बकरे का कोई रक्षक नहीं है, जो तड़प रहा है और श्वासें छोड़ रहा है ऐसे उस बकरे को मार ही डालते हैं। यह कितनी विपरीत बात है। लिखा भी है—

अन्ये चैवं वदन्त्येके यज्ञार्थं यो निहन्त्यते,  
तस्य मांसाशिनः सोपि सर्वेयान्ति सुरालयम् ।

कोई-कोई लोग ऐसा कहते हैं कि यज्ञ में जो पशु मारा जाता है और जो लोग उसका मांस खाते हैं वे सब और वह पशु सब स्वर्ग में जाकर उत्पन्न होते हैं। परन्तु ऐसा कहने वालों को समझना चाहिये कि यदि उनका ऐसा निश्चय है तो फिर वे लोग अपने पुत्र भाई आदि का होम क्यों नहीं करते। जिससे वे सब लोग अनायास ही स्वर्ग में जा पहुँचे। और भी लिखा है—

नां हं स्वर्गंकं लोपभोगं तृष्णितो नाभ्यार्थितस्तवं मया,  
संतुष्टस्तृणभक्षणेन सततं हंतुं न युक्तं तव ।  
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे धूवं प्राणिनो ।

यज्ञं किं करोषि मातृपितृभिः पुत्रेस्तथा बांधै ॥

जिस पशु को यज्ञ में मारना चाहते हैं वह पशु उन श्रोत्रियों से कहता है कि हे भाई! तू जो मूझे मारकर स्वर्ग पहुँचाना चाहता है सो भाई मूझे तो स्वर्ग के फल मांगने की लालसा नहीं है, न मैं आप लोगों से स्वर्ग पहुँचाने की प्रार्थना करता हूँ मैं तो सदाकाल तृण भक्षण करने में ही सन्तुष्ट रहता

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इसलिये मुझे मारना सर्वथा अनुचित है। यदि यह बात निश्चित है कि इस यज्ञ में मारे हुए प्राणी सब स्वर्ग में चले जायेंगे तो फिर आप लोग अपने माता-पिता पुत्र भाई आदि कुटुम्बियों का ही इस यज्ञ में होम क्यों नहीं करते? जो वे सब अनायास ही स्वर्ग में पहुँच जायें?

आगे अन्य प्रकार से भी ऐसी हिंसा का निषेध करते हैं।

अण्णं इयणि सुणिज्जइ सत्थे हिरवंभरुद्भताणं,  
सध्वेसु जीवरासिसु अगे वेवा हु णिवसंति ।

इनके मत में यह भी लिखा है कि ब्रह्मा-विष्णु-महादेव समस्त जीवों के अंगों में निवास करते हैं। यथा—

नाभिस्थाने बसेद् ब्रह्मा विष्णुः कंठे समाश्रितः,  
तालुमध्ये स्थितो रुद्रो ललाटे च महेश्वरः ।

समस्त जीव राशियों की नाभि में ब्रह्मा निवास करते हैं, विष्णु कण्ठ में निवास करते हैं, तालु के मध्य भाग में रुद्र निवास करते हैं, ललाट पर महेश्वर रहते हैं, नाक के अग्र भाग पर शिव रहते हैं तथा नासिका के अन्त में अन्य देवता रहते हैं।

आगे किसी भी जीव को मारने से इन ब्रह्मा-विष्णु-महादेव की भी हिंसा होती है, ऐसा दिखलाते हैं—

सध्वेसु जीवरासिसु ए ए णिवसंति पंच ठाणेसु,  
जड़ि तो किं पशु वहणे ण मारिया होति ते सध्वे ।

इस संसार में रहने वाले समस्त संसारी जीवों के नाभि, कण्ठ, तालु, ललाट और नासिका इन पाँचों स्थानों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर रहते हैं फिर भला किसी भी प्राणी को मारने से उनकी मान्यतानुसार इन ब्रह्मा, विष्णु, महेश का भी धात अवश्य हो जाता है। इस प्रकार किसी भी जीव की हिंसा करने से इन देवों की भी हिंसा अवश्य होती है।

आगे इसी बात को स्पष्ट कहते हैं—

देवे वहिऊण गुण लव्भइ जड़इत्थ उत्तमा केई,  
तो रुक्ष्य वंदणया अवरे पारद्विया सध्वे ।

इस संसार में यदि उत्तम पुरुष देवों को मारकर ही गुण प्राप्त करना चाहते हैं, स्वर्गादिक की प्राप्ति करना चाहते हैं तो वे सब लोग लोग हत्यारे

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

पारधी हैं जो लोग वृक्षों की बन्दना करके भी प्रसन्न होते हैं अर्थात् वृक्ष वा पौधों तक को नहीं तोड़ते ऐसे लोगों को छोड़कर शेष जीवों को मारने वाले सब पारधी हैं लिखा भी है -

नहिं हिं साकृते धर्मः सारं भे नास्ति मोक्षता,  
स्त्री सम्पर्के कुतः शौचं मांसभक्षे कुतो दया ।

हिंसा करने पर कभी धर्म नहीं हो सकता, घर के वा व्यापार आदि के आरम्भ कार्य करते हुए कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते, स्त्री समागम करने पर कभी पवित्रता नहीं हो सकती और मांस भक्षण करने पर कभी दया नहीं हो सकती ।

तित्तसर्षपमात्रं वा तो मांसं भक्षयेत् द्विजः,  
स नरकान्तं निवर्तेत् यावच्चन्द्रदिवांकरौ ।

जो ब्राह्मण तिल वा सरसों के समान भी मांस भक्षण करता है वह जीव जब तक सूर्य, चन्द्रमा विद्यमान रहेंगे तब तक कभी नरक से नहीं निकल सकता ।

आकाशगामिनो विप्राः पतिता मांस भक्षणात्,  
विप्राणां पतनं दृष्ट्वा तस्मान्मांसं न भक्षयेत् ।

ब्राह्मण लोग पहले आकाशगामी थे परन्तु मांस भक्षण करने से वे पतित हो गये और पृथ्वी पर चलने लगे । इस प्रकार उस के पतन को देखकर कभी भी मांस भक्षण नहीं करना चाहिए । आगे ऐसे विपरीत मिथ्यात्व का फल दिखलाते हैं -

इयं विवरीयं उत्त मिच्छतं पावकारणं विसमं  
तेण पस्तो जीवो णरय गई जाइ णियमेण ।

इस प्रकार जो मिथ्यात्व महापाप का कारण है और अत्यन्त विषम है ऐसे विपरीत मिथ्यात्व का स्वरूप कहा । जो पुरुष इस विपरीत मिथ्यात्व में प्रवृत्त होता है वह नियम से मरकर नरक में जाता है ।

अवि सहइ तत्थ दुखं सक्करपमुहणरयविवरेसु,  
कह सो सग्गं पावइ णिहय पसू खद्धपत्तगासौ ।

नरक में जाकर वह प्राणी रत्न प्रभा, शर्करा प्रभा आदि सातों नरकों की भूमियों में वा किसी एक भूमि में अत्यन्त महादुःख सहन करता है सो ठीक

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

ही है क्योंकि जो पशुओं को मारता है और उनका मांस भक्षण करता है उसको त्याग की प्राप्ति भला कैसे हो सकती है ? अर्थात् कभी नहीं हो सकती । उसको तो नियम से नरक की प्राप्ति होगी ।

जइकहवनत्यणिगइउप्यज्जइपुणुवितिरियजोणिसु,  
यइ सोत्तिएहिं णित्ताणो पुण वि जणमिम् ।  
यदि किसी प्रकार वहाँ से निकलता भी है तौ फिर उसी तिर्यज्य योनि में उत्पन्न होता है और अन्य श्रोत्रियों के द्वारा यज्ञ में मारा जाता है वहाँ पर उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता ।

णियभाषाए जंपइ मे मंतो कहइ आसि मे रइयं,  
एवं वेयविहाणे संपता दुग्गई तेण ।  
जब वह श्रोत्रियों के द्वारा मारा जाता है तब वह अपनी भाषा में शब्द कहता है अर्थात् वह करता है कि यह सब मेरा ही बनाया हुआ है मैने ही पहले किसी यज्ञ में पशुओं को मारा इसलिए ऐसे ही यज्ञ में अब मैं मारा जाता हूँ । इस प्रकार वेद के कहे अनुसार वह जीव अनेक प्रकार की दुर्गतियों में प्राप्त होता है और फिर मरकर नरक में जाता है । इस प्रकार वह इस संसार में महा दुःख भोगता रहता है ।

इय विलवन्तो हण्णइ गतयं मुहनासरंधरुंधिता,  
भविखयइ सोत्तिएहिं विहिण बहुवह वतेहिं ।  
इस प्रकार अनेक वेदों को जानने वाले श्रोत्रिय लोग उस पशु के नाक और मुख के छिद्रों को बन्द कर देते हैं और फिर जो पशु विलाप करता है और उसके मुख नाक के छिद्रों से रुधिर निकलता है ऐसे उस पशु को वे लोग कथित की विधि के अनुसार मारकर खा जाते हैं ।

अस विवरीयं कहियं मिच्छतं पावनारणं विसमं ।  
जो परिहरइ मणुस्सो सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥  
इस प्रकार जो यह विपरीत मिथ्यात्व महा पाप का कारण है और अत्यन्त विषम है उसका स्वरूप कहा 'जो मनुष्य इस विपरीत मिथ्यात्व का सर्वथा त्याग कर देता है वही जीव स्वर्गादिक के उत्तम स्थान प्राप्त कर सकता है ।'

वनस्पति (बीज, फल, फूल) तथा बकरादि जीव और मांस में समानता नहीं है परन्तु दोनों में महान् अन्तर है ऐसा वर्णन जैनाचार्यों ने निम्न प्रकार

\*\*\*\*\* 63 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* 64 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

से किया है -

कश्चिदाहेति यत्सर्वं धान्यपुण्यफलादिकम् ।

मांसात्मकं न तत्किं स्याज्जीवां गत्वप्रसंगतःः ॥

कोई-कोई यह कहते हैं कि संसार में जितने धान्य फल-फूल आदि हैं वे सब जीव के शरीर के ही अंग हैं इसलिए वे मांस रूप ही क्यों नहीं कहला सकते । परन्तु उनका यह कहना सर्वथा अनुचित है । क्योंकि -

जीवत्वेन हि तुत्या वै यद्यप्ते भवन्तु ते ।

स्त्रीत्वे सति यथा माता अभक्ष्यं जंगमं तथा ॥

यद्यपि जीव होने के कारण जंगम और स्थावर दोनों प्रकार के जीव समान हैं परन्तु मांस उत्पन्न होने के लिए समान नहीं है । स्थावर जीवों के शरीर में कभी मांस उत्पन्न नहीं हो सकता । जिस प्रकार स्त्रीपना होने पर भी माता माता है वह स्त्री नहीं हो सकती । इसी प्रकार जंगम जीवों का शरीर कभी भी भक्षण करने योग्य नहीं हो सकता ।

यद्दृग्रुढः पक्षी पक्षी न तु एव सर्वं गरुडोस्ति ।

रामैव चास्ति माता माता न तु सार्विकां रामा ॥

जिस प्रकार गरुड़ तो पक्षी होता है परन्तु जितने पक्षी हैं वे सब गरुड़ नहीं हो सकते । इस प्रकार स्त्री ही माता है परन्तु माता सब रूप से स्त्री नहीं हो सकती ।

शुद्धं दुधं न गोमांसं वस्तुर्वेचित्यक्लीदृशम् ।

विषधनं रत्नमादेयं विषं च विषदे मम् ॥

जिस प्रकार रत्न और विष दोनों ही समुद्र से उत्पन्न होते हैं तथापि रत्न विष को दूर करने वाला है इसलिए उपादेय है और विष विषत्ति का कारण है इसलिए त्याज्य है । इसी प्रकार दूध भी गाय से उत्पन्न होता है और मांस भी गाय से उत्पन्न होता है परन्तु दूध शुद्ध है और मांस शुद्ध नहीं है । यह केवल वस्तु की विचित्रता है ।

हे यं पतं पयः पेयं समे सत्यषि कारणे ।

विषद्रोरायुषे पत्रं मूलं तु मृत्ये स्मृतम् ॥

यद्यपि दूध और मांस दोनों ही उत्पत्ति का समान कारण है । गाय से ही दोनों उत्पन्न होते हैं तथापि मांस त्याज्य है और दूध पीने योग्य है । देखो

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

विष वृक्ष के पते आयु बढ़ाते हैं और उसकी जड़ मृत्यु का कारण है ।

पंच गव्यं तु तैरिष्ठं गोमांसे कापथः कृतः ।

तप्तिष्ठत्त्वाद्युपादेया प्रतिष्ठादिषु गोरोचना ॥

ब्राह्मण लोग पंचगव्य मानते हैं परन्तु गोमांस उसमें भी वर्जित है तथा उसी गाय के पित्त से उत्पन्न हुआ गोरोचन वे लोग अपने प्रतिष्ठादिक के काम में लाते हैं ।

इति हे तार्न वक्तव्यं सादृश्यं मांसधान्ययोः ।

मांसं निन्द्यं न धान्यं स्यात् प्रसिद्धेयं श्रुतिर्जनैः ॥

इन सब कारणों को समझकर यह कभी नहीं कहना चाहिये कि मांस और धान्य दोनों समान हैं । मांस और धान्य कभी समान नहीं हो सकते । मांस महा निन्द्य है और धान्य नहीं है । यह बात सब लोग जानते हैं । इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है ।

(भाव, संग्रह) पृ. 33

## 'पशु बलि का प्रारम्भ'

अथानन्तर कृष्ण की छोटी बहन जगत में उत्तम चन्द्रमा के समान निर्मल यश को धारण करने वाली एवं मनोहर गुणरूपी आभूषणों से भूषित यशोदा की पुत्री (जो कृष्ण के बदले में आयी थी) ने अतिशय प्रसिद्ध प्रथम यौवन के बहुत भारी भार को धारण किया । जिनके अंगुली रूपी पल्लव श्रेष्ठ नखरूपी चन्द्रमण्डल से सुशोभित थे । जिन्होंने अपनी स्वाभाविक ललाई से देदीप्यमान महावर की हँसी की थी, तथा जो अग्रभाग में समान रूप से ऊँचे उठे हुये थे । ऐसे उसके चरण कमलों की उपमा उस समय लज्जा से ही मानों संसार में कहीं चली गयी थी ।

उसके कोमल चरण-कमल अनुपम थे जो अत्यन्त मजबूत एवं गूढ गाँठों और घुटनों से मनोहर थी, उत्तरोत्तर बढ़ती हुई गोलाई से सुशोभित एवं रोमरहित थी, नितम्बों का बहुत भारी भार धारण करने में समर्थ थी, और जो परस्पर के प्रतिस्पर्धी महल के समान जान पड़ती थी, ऐसी उसकी अनुपम जंघाओं की उस समय कहीं उपमा नहीं रही । जो कोमल गोल और शुभ्र थे, जिनसे

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

अत्यधिक स्थायी एवं श्रेष्ठ कान्ति चूरही थी, जो दीप्ति रूपी रस से परिपूर्ण थे।

हाथी की सूँड और गोल कदली की सुकुमारता को उल्लंघन कर विद्यमान थे। अतिशय प्रसिद्ध थे और यर्थाथ गुणों से युक्त थे, ऐसे उसके दोनों ऊरु उस समय अत्यधिक सुशोभित होने लगे। कलहंस के समान सुन्दर चाल से सुशोभित उस कन्या की स्थूल जग्नस्थली, अनेक रसों से परिपूर्ण वर्ण वाले कुलाचलों से उत्पन्न स्त्रियों के लिये हर्ष उत्पन्न करने वाले पुण्य रूपी, नदी की उस पुलिन भूमि-तट भूमि के समान सुशोभित होने लगी।

जो काम की अभूमि-अगोचर तथा नितम्ब रूपी सुन्दर तटों से युक्त थी। वह कन्या सूक्ष्म कोमल और अत्यन्त काली रोमशा जिसे, मनुष्यों के नेत्रों को आनन्द देने वाली अपनी नाभिकीं गहराई से और शरीर के मध्य में स्थित त्रिवलियों-तीन रेखाओं की विचित्रता से संसार की समस्त सुन्दर स्त्रियों के बीच अत्यधिक सुशोभित होने लगी।

वक्ष स्थल पर अत्यन्त नील चूचुक से युक्त कठोर गोल और स्थूल स्तनों का भार धारण करने से वह कन्या ऐसे सुशोभित होने लगी मानो 'अमृत रस का घर खिरकर कहीं नष्ट न हो जाये'। इस भय से इन्द्र नील मणि की मजबूत मुहर से युक्त देवीष्य मान सुवर्ण के दो कलश ही धारण कर रही हो। शिरीष के फूल के समान कोमल मोटी और उत्तम कन्धों से युक्त उत्तम कमल की कान्ति के समूह के समान लाल-लाल हथेली रूप पल्लवों से सहित, कुरुब के फूल के समान लाल एवं सुन्दर नखरूपी पुष्पों से सुशोभित तथा मूँग की कोशों का अनुकरण करने वाली अंगुलियों से युक्त भुजारूपी लताओं से वह अत्यधिक सुशोभित होने लगी। कोमल शंख के समान कण्ठ, ठुड़ी अधरोष्ठरूपी विम्बीफल, प्रकृष्ट हास्य से युक्त श्वेत कपोल, कुटिल भौंहें, ललाट तट एवं द्विगुणित कोमल नीलकमल का उत्तम डण्ठलके समान कानों को धारण करने वाली और सफेद, काले तथा विशाल नेत्रों से सहित वह चन्द्रमुखी कन्या, सुन्दर शिरपर भ्रमरों की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले देवीष्यमान धुंधराले एवं विस्तृत कटि-तट पर पड़े प्रकाशमान उस के शसमूह को धारण कर रही थी, जो लटकते हुए काम-पाशके समान लोगों को वश करने वाला था। हाथ और पैरों में स्थित अँगूठी, कड़े तथा नूपुर आदि समीचीन एवं प्रसिद्ध चौदह, आभरणों से जिसका शरीर आभूषण-स्वरूप हो रहा था, जो शोभायमान अंगराग, कोमल

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

वस्त्र और महामालाओं को धारण कर रही थी तथा जिसे कन्याओं के उचित समस्त सुख उपलब्ध थे ऐसी वह कन्या अपने शरीर के द्वारा संसार की अन्य युक्तियों को आच्छादित कर रही थी, तिरस्कृत कर रही थी, वह पिता, पुत्र आदि समस्त यदुवंश के मनुष्यों के द्वारा योग्य सत्कार के द्वारा किए हुए गौरव की भूमि थी, समस्त कलाओं और मनोहर गुणों के समूह की महाबसतिका थी और कुटुम्बी जनों के समीप स्वयं शरीरधारिणी सरस्वती के समान जान पड़ती थी।

इस प्रकार समय व्यतीत होने पर कदाचित् बलदेव के पुत्रों ने आकर उसे नमस्कार किया और जाते समय अपने अलहड़ स्वभाव से उसे 'चपटी नाकवाली' कह कर चिढ़ा दिया। उसने एकान्त में दर्पण में प्रतिबिम्बित नाक से युक्त अपना मुख देखा जिससे वह लज्जित होती हुई उस पर्याय से विरक्त हो गयी। उसने नगर में विद्यमान आर्यिकाओं के समूह की प्रधान सुव्रता नामक गणिनी के चरणों की शरण प्राप्त की और उन्हें साथ लेकर वह ब्रतधर नामक मुनिराज के चरण मूल में गयी। उन्हें नमस्कार कर उसने उक्त मुनिराज से पूछा कि 'हे भगवान् ! मैंने पूर्वभव में क्या पाप किया था जिससे मुझे यह कुरुप्राप्त हुआ है।' इसके उत्तर में अवधिज्ञानरूपी नेत्र को विकसित करने वाले मुनिराज उससे इस प्रकार कहने लगे -

हे पुत्री ! पूर्वभव में तेरा जीव सौराष्ट्र देश में उत्तम रूप को धारण करने वाला पुरुष था। वहाँ विषय और इन्द्रिय जन्य सुखों से अत्यन्त मूढ़ बुद्धि होने के कारण वह क्रूरतावश विषयों में स्वच्छन्द हुए अपने मन और नेत्रों को स्वाधीन नहीं रख सका। एक बार एक मुनि मृतशश्या से अत्यन्त विषम तप-तप रहे थे। तूने उन पर अपनी गाड़ी चला दी जिससे उनकी नाक पिचक गयी। मुनिराजने अपने मनमें बहुत भारी धीरता धारण कर रखी थी इसलिए इस घटना से उनके मनमें कुछ भी क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ।

"अजनितजीवधातगुणतो नरके पतनं तव हि  
मनाग्नं जातमृषिगात्रवधादिह तु ।

अजनि विनासिकस्य वदनस्य महाविकृतिः फलति  
फलं स्वकर्मजगतां हि यथाविहितम् ॥ (17)

मुनिराज के जीव का घात नहीं हुआ था इसलिए तेरा नरक वास नहीं

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हुआ। किन्तु उसके शरीर का कुछ घात हुआ था इसलिए इस जन्म में तेरा मुख नासिका से रहित हो महविकृत हुआ है। ठीक ही है संसार में जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है।

“सकृदपि जीवधातकृद्धादसकृत्परतः परवशधातदुःखमभियास्यति जन्तुरिह। अवयवायकृत् सकृदपि स्वकृतैरसकृदवयवधादमेष्यति सदेति जिनस्य वचः ॥ (18)

जिनेन्द्र भगवान् का यह कहना है कि जो प्राणी इस संसार में एक बार भी किसी जीव का घात करता है वह उसके पाप से परंभव में दूसरे के द्वारा घात होने के दुःख को प्राप्त होगा और जो किसी के अवयव का एक बार भी घात करता है वह अपने किए पाप के अनुसार अनेक बार अवयव के घात को प्राप्त होगा।

“वचनमनस्तनुभिरभियः पुरुषाः पुरुषवधादिषु प्रभुतया प्रयतन्त इह। दुरितमहाप्रभुः परभवेषु जनेषु पुनः प्रभवति दुःखदानचतुरश्चतुरेष्वपि हि ॥ (19)

जो कूर मनुष्य, प्रभुता के कारण निर्भय हो मन, वचन, काय से मनुष्य आदि प्राणियों के वथ में प्रयत्न करते हैं परभवों में वे कितने ही चतुर क्यों न हों; दुःख देने में चतुर पापरूपी महाप्रभु उन पर बार-बार अपना प्रभाव जमाता है – उन्हें बार-बार दुःख देता है।

“अत इह जन्तुभिः परवधादिनिवृत्तिपरैः स्वपरहितैः सदापि भवितव्यप्रभुभिः। नहि भवपद्धतौ भवभृतामिह संसरतां स्वकृतभूजां सतां प्रतिभवति सदा प्रभुता ॥ (20)

इसलिए स्वपर हितको चाहने वाले प्राणियों को भले ही वे राजा क्यों न हों सदा पर हिंसा आदि पापों से दूर रहना चाहिए। क्योंकि संसार में भ्रमण करने वाले प्राणी अपने द्वारा किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं उनकी प्रभुता-राज्य अवस्था सदा स्थित नहीं रहती।

इस प्रकार गुरु के वचन सुन वह, सुव्रत गणिनी के साथ चली आयी और समस्त बन्धु जनों का त्यागकर उसने सफेद साड़ी से स्तनों को ढक तथा काले केशों को उखाड़कर आर्थिका का व्रत धारण कर लिया। जिसने आभूषण और मालायें उतारकर फेंक दी थी तथा जिसकी बाहुरूपी लतायें फूलों के समान कोमल थी ऐसी वह कन्या उस समय अपने हाथ की कोमल अँगुलियों से अपने बँधे हुए समस्त बालों को उखाड़ती हुई ऐसी जान पड़ती थी मानो बुद्धिरूपी कुटी के भीतर विद्यमान शल्यों के समूह को ही उखाड़ रही हो। जधन, वक्षः स्थल, स्तन, उदर और चरणोंपर्यन्त समस्त शरीर को एक अत्यन्त कोमल

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

बस्त्र से आच्छादित करती हुई सती उस समय चिरकाल तक शरद् ऋतु की उस नदी के समान सुशोभित हो रही थी जिसने स्वच्छ जल से अपने बालुमय स्थल को ढक रखा था। कुटुम्बी-जनों ने जिसकी दीक्षा-कालीन पूजा की थी और जो बड़े-बड़े तपों जन्म देने वाली थी ऐसी उस नव-दीक्षिता आर्थिका को देखकर उस समय समस्त महाजनों के हृदय में यही बुद्धि उत्पन्न होती थी कि क्या वह धैर्य सहित सरस्वती है अथवा रति तपस्या कर रही है। व्रत, गुण, संयम तथा उपवास आदि तपों एवं प्रतिदिन भायी जाने वाली अनित्य आदि भावनाओं से जो विशुद्ध भावों को प्राप्त हुई थी, जो आगमोक्त अनेक पाठों की वसतिका थी, उत्तमोत्तम गुणों से सहित थी, और सदा आर्थिकाओं के समूह के साथ निवास करती थी ऐसी वह आर्थिका तपस्या करती हुई रहती थी।

तदनन्तर बहुत वर्षों और दिनों के समूह व्यतीत हो जाने पर जिनेन्द्र भगवान के जन्म, दीक्षा और निर्वाण कल्याण की भूमियों में बिहार कर उसी समय बहुत बड़े संघ की प्रेरणा से अपनी सहधर्मिणियों के साथ विन्ध्याचल के विशाल वन में जा निकली। और रात्रि के समय, तीक्ष्ण तलवार के समान निर्मल एवं निर्विकल्प चित को धारण करने वाली वह प्रतिमातुल्य आर्थिका किसी मार्ग के समुख प्रतिमायोग से विराजमान हो गयी। उसी समय किसी बहुत धनी संघ पर आक्रमण करने के लिए रात्रि के समान काली भीलों की एक बड़ी सेना शीघ्रता से वहाँ आयी और उसने प्रतिमायोग से विराजमान उस आर्थिका को देखा। ‘यह यहाँ वन देवी विराजमान है यह समझकर सैकड़ों भीलों ने नमस्कार कर उससे अपने लिए यह वरदान माँगा कि ‘हे भगवति ! यदि आपके प्रसाद से निरूपद्रव रहकर हम लोग धन प्राप्त कर सकेंगे तो हम आपके पहले दास होंगे।’ इस प्रकार मनोरथ कर भीलों का वह विशाल समूह बड़ी मजबूती से चारों ओर से यात्रियों के उस संघ पर टूट पड़ा और उसे मार कर तथा लूटकर कृतकृत्य होता हुआ जब वह वापस समीप में आया तो उसने प्रतिमा योग से स्थित आर्थिका के खड़े होने के स्थान पर यह देखा। जब भील लोग आर्थिका के दर्शन कर आगे बढ़ गए तब वहाँ एक सिंह ने आकर उन पर घोर उपसर्ग शुरू कर दिया। उपसर्ग देख उन्होंने बड़ी शान्ति से समाधि धारण की और मरण पूर्यन्त के लिए अनशनपूर्वक रहने का नियम ले लिया। तदनन्तर प्रतिमायोग में ही मरण कर वे स्वर्ग गयी सो ठीक ही है

क्योंकि सञ्जन पुरुष अपनी मर्यादा से कभी विचलित नहीं होते। निरन्तर धर्म का उपार्जन करने वाली एवं गृहीत समाधि को न छोड़ने वाली उस आर्थिका का शरीर सिंह के नख मुख और दाढ़ों के अग्रभाग से विदीर्ण होने के कारण यद्यपि छूट गया था तथापि उसके हाथ की तीन अंगुलियाँ वहाँ शेष बच रही थीं यहीं तीन अंगुलियाँ उन भीलों को दिखाई दी। खून से विलिप्त होने के कारण जिसका मार्ग अन्तर्हित हो गया था ऐसा वहाँ की समस्त भूमि को उन भीलों ने उस बड़ी आकुलता से यहाँ—वहाँ देखा पर कहीं उन्हें वह आर्थिका नहीं दिखी। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि वरदान देने वाली वह देवी इस रूधिर में ही सन्तोष धारण करती है इसलिए हाथ की उन तीन अंगुलियों को वहाँ देवता रूप से विराजमान कर दिया। और बड़े—बड़े जंगली भैसाओं को मारकर उन विषम एवं क्रूर भीलों ने सब ओर खून एवं मांस की बलि चढ़ाना शुरू कर दी। इस बलिदान से वहाँ मक्खियाँ और मछले होने लगे, वह स्थान आँखों के लिए विष के समान दिखाई पड़ने लगा। तथा फैली हुई सड़ी बास से ये वहाँ की दिशायें दुर्गन्धित हो गयीं।

“सुगतगतामम् परमकारुणिकाँ तपसा जगति जनस्ततः प्रभृति निरागसमत्र जडः। वनचरदर्शितेन नु पथा नरकाभिमुखः पिशितवशो निहन्ति हि पशून् महिषप्रभृतीन्। (34)”

यद्यपि वह आर्थिका परम दयालु थी, निष्पाप थी और तपके प्रभाव से उत्तम गति को प्राप्त हुई थी तथापि इस संसार में मांस के लोभी नरकगामी मूर्ख जन भीलों के द्वारा दिखलाए हुए मार्ग से चलकर उसी समय से भैसा आदि पशुओं को मारने लगे।

“न हि महिषास्त्रपानविधिका न हि शूलकारा न हि सुरदुर्गतावपि परस्परघातकता। रचयति मितिमात्रमुपत्तभ्य कविः कवितां सदसतीं यथा च लिखति ससुटचित्रकरः ॥” (35)

उत्तम देवगति की बात छोड़िये निकृष्ट देवगति में भी कोई देव भैसाओं का रूधिर पान करने वाले एवं हाथों में त्रिशूल धारण करने वाले नहीं हैं और न उनमें परस्पर एक दूसरे का मारना ही है फिर भी कवि स्फुट चित्रकारके समान जरा—सी भिति का आधार पा सत्युरुषों को भी दूषण लगाने वाली कविता लिख डालते हैं।

(‘हरिवंशपुराणे’ पेज नं. 575 से 580)

## बलिदान (हिंसा) का कृदुष्टल

इस पुण्य भूमि भारत वर्ष में अवन्ती नाम का जनपद था। धन—धान्य वैभव सम्पन्न उज्जयनि उसकी राजधानी थी। वहाँ पर धर्मात्मा यशोधर राज्य करता था। उसकी रानी चन्द्रमती थी। उसके यशोधर नाम का एक पुत्र था। एक बार यशोधर अपने सिर पर सफेद केश देखकर सोचने लगे—सफेद के व्याज से ही यमदूत ही है। उससे वे वैराग्य सम्पन्न होकर पुत्र यशोधर को राज्य समर्पण पर सर्वसन्यास कर दिगम्बर मुनि बन गये।

राजा यशोधर अमृतमती रानी के साथ विवाह करके आमोद—प्रमोद में कालयापन करने लगे।

एक दिन राजा यशोधर रानी अमृतमती से आकर्षित होकर शीघ्रता से राज्यकार्य समाप्त करके रानी अमृतमती के महल में रात्रि को पहुँचे। वहाँ पर राजा रानी के साथ आमोद—प्रमोद हर्षविलास करके लेटे हुये था कि तब रानी अन्य एक जार पुरुष (कुलटा पुरुष) से आकर्षित होकर राजा को सोया जानकर धीरे से पलंग से उत्तर कर बाहर जाने लगी। राजा इस घटना को स्पष्ट देखते हुए भी उनको अविश्वास होने लगा कि क्या रानी सचमुच इस रात्रि में पलंग को त्याग कर बाहर जा रही हैं ? क्योंकि राजा अमृतमती को अत्यन्त पतिपरायण, शीलवती, सती स्त्री मानते थे। सती स्त्री का कर्तव्य होता है कि बिना पति की आज्ञा से कोई भी कार्य नहीं करना। यथार्थ से वस्तु—स्थिति को जानने के लिए राजा भी गुप्त रूप से रानी के पीछे—पीछे जाने लगा। रानी गुप्त रूप से महाराज के गजशाला में जा पहुँची। वहाँ पर महावत सो रहा था। रानी ने सोते हुए महावत को जगाया महावत अत्यन्त कुरुप अत्यन्त कृष्णवर्ण वाला एवं दुर्गन्ध युक्त था।

महावत उठने के बाद क्रोधित होकर रानी को डॉट—फटकार लगाते हुए चाबुक से तीव्र प्रहार करने लगा। वह बोला— दुष्टा, इतनी देरी क्यों की ? रानी अत्यन्त अनुनय विनय से महावत का पाँच पकड़कर बोली— मेरे प्राण प्रिय, मुझे क्षमा कीजिए मैं आपसे मधुर मिलन के लिए अतिशीघ्र आने को सोची थी। परन्तु दुष्ट मूर्ख राजा मेरे साथ अधिक देरी तक वार्तालाप करते हुए नहीं सोये। इससे मैं शीघ्र आकर आपकी सेवा में उपस्थित नहीं

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हो पाई। अत्यन्त अनुनय विनय, क्षमा प्रार्थना, आमोद-प्रमोद के साथ विलास किया। राजा गुप्तरूप से दूर से इस अवांछनीय मर्मविदारक घटना को देखकर पहले तो स्वयं को ही विश्वास नहीं कर पाया कि यह घटना यथार्थ है या मैं स्वप्न देख रहा हूँ। उन्होंने स्वयं को टटोला, परिक्षण किया और जाना कि यह घटना सत्य है। तब उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर दोनों को वहाँ समाप्त करना चाहा परन्तु वे सोचने लगे कि मैं क्षत्रिय राजा हूँ। मेरी तलवार शूर, वीर स्वाभिमानी क्षत्रिय के ऊपर वार करने योग्य है। यह दोनों दीन, नीच, भ्रष्ट हैं। एक तो मेरा ही सेवक है दूसरी कलंकनी स्त्री है। इसी प्रकार विचार कर राजा दोनों के घात से निवृत्त होकर चिन्तित मन से गुप्त रूप से पुनः वापिस महल में आ पहुँचा। राजा पलंग पर लेटे परन्तु चिन्ता की तीव्र घात-प्रतिघात से निद्रा नहीं आयी। वे स्त्रियों के स्वभाव, संसार के रहस्य एवं कामभोग का दुष्परिणाम का गहन चिन्तन करते हुए पलंग में लेटे रहे। इससे उनको संसार शरीर भोग के प्रतिवैराग्य उत्पन्न हुआ। कुछ समय के उपरान्त अमृतमती-कलंकिनी रानी चुपचाप वापिस आकर राजा के साथ पलंग पर लेट गयी। पहले राजा जिस के सहवास के लिए लालायित, उत्कंठित, आतुर होते थे एवं सहवास से आनन्द अनुभव करते थे वे अपनी लम्बी द्रष्टिकी फेर से अमृतमती का स्पर्श बड़नावल के समान सन्ताप देने वाला अनुभव देने लगा। वे सोचे रानी नाम से अमृतमती है परन्तु काम से विषमती है। अमृतमती को वे भयंकर विषधर सर्प से भी अधिक विचारने लगे।

येन-केन प्रकारेण रात्रि व्यतीत हुई। नियमानुसार दिन को वह राजसभा में गये। राजसभा में भी अंतरंग दुख की ज्वाला अंग-अंग से फूटने के कारण उनका शरीर कोयले के समान मलिन, उदासीन एवं प्रभावहीन था। वहाँ उनकी माता चन्द्रमती ने उसके उदास होने का कारण पूछा—राजा यशोधर ने पूर्वघटित वृणित घटना को व्यक्त करने के लिए असमर्थ होने के कारण एवं संसार से विरक्त होने के कारण कहा—“हे मातेश्वरी! मैंने जो रात को दुःखस्वप्न देखा उसका कारण मैं हूँ और इस दुःखस्वप्न को शान्त करने के लिए मैं समस्त राजवैभव त्यागकर एवं अपने राजकुमार यशोमती को राजा बनाकर मुनि होकर वन जाना चाहता हूँ। इस मर्मविदारक खबर को सुनकर माँ चिन्तित हुई और उसने कुलदेवी को बलि चढ़ाकर स्वप्न शान्ति करने का उपाय बताया।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

माँ का यह प्रस्ताव सुनकर धर्मात्मा यशोधर राजा ने कहा कि ‘‘मैं अपनी शान्ति के लिए पशु-हिंसा नहीं कर सकता हूँ क्योंकि हिंसा महापाप है और पाप से कदापि शान्ति नहीं मिल सकती है। तब माँ ने कहा कि ‘‘हम आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि चढ़ायेंगे और उसी का प्रसाद ग्रहण करेंगे। इससे शान्ति मिलेगी।’’ तब भी राजा नहीं माने। तब माँ ने कहा—‘‘मैं स्वयं अपनी बली देवी के सामने, शान्ति के लिए चढ़ाऊँगी। इससे राजा ने किंकर्तव्यविमूढ़ होकर यह बात मान लो। और साथ ही अपने पुत्र यशोमती के राज्याभिषेक की आज्ञा दी।’’

यह समाचार जब रानी ने सुना तो वह भीतर से अत्यन्त प्रसन्न हुई पर स्त्री की मायाचारी के अनुसार ऊपरी दिखावा करती हुई बोली—महाराज ! मुझ पर भी कृपा करके मुझे भी अपने साथ वन में ले चलें, क्योंकि आप मेरे लिए प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। आपके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। कुलटा रानी की इस उगाई से राजा के मन में गहरी चोट लगी। राजा का विश्वास उस पर से पूर्ण हट गया था। मायाचारी का मायाचार, वे पूर्ण रूप से जान चुके थे।

राजा ने माता की इच्छानुसार देवी के मन्दिर में जाकर आटे से निर्मित कृत्रिम मुर्गे की बलि चढ़ायी। इससे उसकी माँ प्रसन्न हुई। अमृतमती रानी जो नाम से अमृतमती है काम से विषमती थी। उसको भय हुआ कि कहीं राजा का वैराग्य क्षणिक न हो। यदि क्षणिक वैराग्य के कारण वे सन्यास व्रत धारण नहीं करेंगे, घर पर ही रहेंगे तब मेरा जधन्य कुकृत्य सबको विदित हो जायेगा। कुकृत्य को राजा बहुशः पूर्णतः जान चुके हैं इसलिये वे यह समस्त कार्य कर रहे हैं। राजा यदि वन नहीं जायेंगे राजमहल में रहेंगे तो मुझे प्रेम-दृष्टि से नहीं देखेंगे और मेरा प्रेम-संयोग महावत के साथ भी निर्विघ्न नहीं चल सकता ह। इस प्रकार विचार करके राजा को पूर्ण रूप से घात करने के लिए उपाय सोचने लगी। उसने सोचा ‘‘न रहे बाँस न बजे बांसुरी।’’ यदि राजा ही नहीं रहेंगे तब मुझे किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचेगी। इसी प्रकार विचार कर दुष्टा, कुशील, निर्दयी रानी, राजा के पास जाकर बोली—‘‘हे राजन् ! गृह त्याग से पहले मेरा निमन्त्रण स्वीकार करके अन्तिम बार भोजन स्वीकार करिये। मोह महामद होता है। मोहमद से मदमत्त व्यक्ति को हिताहित विवेक

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

एवं करणीय—अकरणीय का ज्ञान नहीं रहता है। राजा ने अन्तः रानी का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दोनों माता एवं पुत्र ने अमृतमती के महल में जाकर भोजन किया। भोजन में अमृतमती ने विष मिलाकर दोनों को भोजन परोसा जिससे दोनों विषमिश्रित भोजन करके विष से व्याप्त होकर मूर्च्छित हो गए। अमृतमती ने जब देखा कि राजा मूर्च्छित होकर गिर गए हैं तब उसको समूल नाश करने के लिए राजा के ऊपर गिरकर एवं राजा को आलिंगन करते हुए राजा का गला से दबाकर मार डाला। बाहर से वह स्त्री की मायाचारी एवं चरित्र के अनुकूल रोने लगी ‘‘हाय मेरे पति क्योंकर मूर्च्छित होकर गिर गये !’’ ठीक ही नीतिकारों ने कहा है—

‘स्त्री चारित्र जाने नहिं कोय,  
पति मार कर सती होय।’

उपरोक्त प्रकार से माता एवं पुत्र दोनोंने आर्त एवं रौद्र ध्यान से मरकर कुगति को प्राप्त किया। मरने के बाद यशोधर राजाने मोर होकर जन्म लिया और चन्द्रमतीने कुत्ता होकर जन्म किया। पूर्व संस्कार के कारण दोनों का पालन—पोषण उनके घर पर ही राजा के पुत्र यशोमती ने ही किया। एक दिन मोर राजमहल के ऊपर बैठकर इधर उधर निरीक्षण कर रहा था उस समय उसकी दृष्टि हटात् एक स्थान में जम गई। वह देखता है कि पूर्व भव की रानी अमृतमती महावत के साथ प्रेमलाप करते हुए कामासक्त है। तब वह मोर क्रोध वश जाकर दोनों को क्षत—विक्षत कर देता है। तब अमृतमती अपना रत्नहार मोर को मारने के लिए फेंकती है। रत्नहार के प्रहार से मोर घायल होकर दुखी होकर भागता है तब माता चन्द्रमती जो मर कर कुत्ता होकर उस महल में ही थी वही कुत्ता आकर मोर को पकड़ कर पूर्ण रूप से मार देता है। प्रिय मोर के मरण से दुःखी होकर यशोमती ने कुत्ते को भी मार डाला। ठीक ही है— पूर्वकृत कर्म जीव की छाया के समान फल देने तक पीछा ही करता है। पूर्व वैरत्व के कारण अभी भी परस्पर घात प्रतिघात करके मरे। इसी प्रकार पाप—कर्म की प्रेरणा से दोनों मरकर तीसरे जन्म में साँप हुए। पुनः मरकर चौथे भव में मत्समगर हुए। फिर पुनः मरकर पाँचवे भव में बकरा एवं बकरी बने। पुनः मरकर छठवे भव में बकरा एवं भैसा हुए। सातवें भव में मुर्गा—मुर्गी हुए। इसी प्रकार हिंसा एवं आर्त—रौद्र ध्यान के कारण दोनों कुयोनि

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

अत्यन्त दुःख सहन किए।

मुर्गा—मुर्गी भव में दोनों दिग्म्बर मुनि महाराज के मुख से पवित्र णमोकार मन्त्र का श्रवण कर मरे। णमोकार मन्त्र के अचिन्त्य प्रभाव से दोनों अपने ही पर पर अपने ही पुत्र यशोमती की रानी के गर्भ में आए। दोनों युगल रूप पुत्र—पुत्री के रूप में जन्म लिए। दोनों का नाम अभयरूचि एवं अभयमती था।

एक दिन भाई अभयरूचि एवं बहन अभयमती जैनाचार्य के पास जाकर उपदेश सुने एवं पूर्वभव श्रवण कर दोनों को पूर्वभव का श्रवण हो गया जिसे जाति—स्मरण कहते हैं। उस ज्ञान—रूपी परदे में पूर्व भव का दृश्य स्पष्ट रूप प्रतिबिम्बित होने लगा। पूर्वभव के समस्त राज्यवैभव, भोगविलास, आटे के मुर्गे की हिंसा, अमृतमती का विषचरित कार्य—कलाप भी स्मृतिपट में स्पष्ट प्रतिभाषित होने लगा। इससे उनको भोग से, हिंसा से, संसार से, अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ। संसार—शरीर—भोग से विरक्त होकर दोनों के बल आठ वर्षकी आयु में क्षुल्लिका के ब्रत स्वीकार कर लिये।

उपरोक्त घटना से हिंसा, हिंसा का फल, कामासक्त स्त्री का स्वभाव, कार्यकलाप ज्वलन्त रूप से प्रतिभाषित हो जाता है। यदि केवल आटे निर्मित मुर्गे की हिंसा से इतना दुःख मिला तो साक्षात् जीव की हिंसा से क्या—क्या फल मिलेगा उसे स्वयं विवेकी सोचे ! हिंसा का फल पढ़कर स्वयं विवेकीजन विचार करें।

## ‘यथार्थ यज्ञ तथा ब्राह्मण’

वाराणसी नगरी में जयघोष और विजयघोष दो भाई थे। वे काश्यप—गोत्रीय ब्राह्मण थे, वेदों के ज्ञाता थे। एक बार जयघोष गंगा नदी में स्नान के लिए गया। वहाँ उसने एक सर्प को मेढ़क निगलते हुए देखा। इतने में एक कुरर पक्षी आया, उसने साँप को पकड़ा। साँप में ढक को निगल रहा है और कुरर साँप को। इस द्रश्य को देखकर जयघोष विरक्त हो गया। वह जैन साधु बन गया।

(उत्तराध्ययन, अ. 25, पृष्ठ 257)

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

एक बार जयघोष वाराणसी में भिक्षा की खोज में निकले वे भ्रमण करते हुए उसी यज्ञ-मण्डप में पहुँच गए, जहाँ विजयघोष अनेक ब्राह्मणों के साथ यज्ञ कर रहा था। उग्र तप के कारण जयघोष का शरीर कृश-क्षीण हो गया था। विजयघोष ने उसे बिलकुल भी नहीं पहचाना जयघोष ने भिक्षा की याचना की, किन्तु विजयघोष ने इन्कार कर दिया जयघोष को इन्कार से दुःख नहीं हुआ। वह पूर्णरूप से शान्त रहा। परिबोध के भाव से उसने विजयघोष को कहा - 'भिक्षा दो, इसलिए मैं तुम्हें कुछ नहीं कह रहा हूँ। मुझे तुम्हारी भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है किन्तु तुम्हें जानना चाहिए कि जो यज्ञ तुम कर रहे हो, वह वास्तविक यज्ञ नहीं है। सच्चा यज्ञ भावयज्ञ है। कषाय, विषय, वासनाओं को ज्ञानाग्नि में जलाना ही सच्चा यज्ञ है। सच्चारित्र से ही सच्चा ब्राह्मण होता है। जाति में कोई मानव ब्राह्मण नहीं होता है।'

तू वेद के मुख को नहीं जानता है, और न यज्ञों का जो मुख है, नक्षत्रों का जो मुख है और धर्मों का जो मुख है, उसे ही जानता है। जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ है उन्हें भी तू नहीं जानता है। यदि जानता है, तो बता। उसके आक्षेपों का प्रश्नों का प्रमोक्ष अर्थात् उत्तर देने में असमर्थ ब्राह्मण ने अपनी समग्र परिषदा के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से पूछा तुम कहो-वेदों का मुख क्या है? यज्ञों का जो मुख है, वह बतलाओ। नक्षत्रों का मुख बताइए और धर्मों का जो मुख है। उसे भी कहिए। और अपना तथा दूसरों का उद्धार करने में जो समर्थ हैं, वह शुद्ध भी बतलाओ। मुझे यह सब संशय है। साधु! मैं पूछता हूँ, आप बताइए॥

जयघोष मुनि बताना आरम्भ करते हैं - वेदों का मुख अग्नि होत्र है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी है, नक्षत्रों का मुख चन्द्र है और धर्मों का मुख काश्यप (ऋषभदेव) है। जैसे उत्तम एवं मनोहारी ग्रह आदि हाथ जोड़कर चन्द्र की वन्दना तथा नमस्कार करते हुए स्थित हैं, वैसे ही भगवान् ऋषभदेव हैं, - उनके समक्ष भी जनता विनयवंत है।

अजाणगा जन्नवाई विज्ञा माहणसंपया।

गृद्धा सज्जायतवसा मासच्छन्ना इवडिग्नी। (18)

विद्या ब्राह्मण की सम्पदा है, यज्ञावादी इससे अनभिज्ञ हैं, वे बाहर स्वाध्याय और तप से वैसे ही आच्छादित हैं, जैसे कि अग्नि राख से ढूँकी है।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*  
होती है।

जे लोए बभ्भणो वुत्तो अग्नी वा महिओ जहा,  
सथा कुसलसंदिट्ठं तं वयं बूम माहण । (19)

जिसे लोक में कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है जो अग्नि के समान सदा पूजनीय है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जो न सज्जइ आगन्तु पव्वयन्तो न सोयई,  
रमए अज्ञावयणमि तं वयं बूम माहण। (20)

जो प्रिय स्वजनादि के आने पर आसक्त नहीं होता और न जाने पर शोक करता है। जो आर्य-वचन में अर्हद्वाली में रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जायरुवं जहामट्ठं निद्वन्तमलपावगं,  
राग-द्वोस-भयाईयं तं वयं बूम माहण । (21)

कसौटी पर कसे हुये और अग्नि के द्वारा दग्धमल हुए - शुद्ध किए गए जातरूप सोने की तरह जो विशुद्ध हैं, जो राग से, द्वेष से और भय से पुक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तवस्सियं किसं दन्तं अवचियमंस-सोणियं,  
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं तं वयं बूम माहण। (22)

जो तपस्वी है, कृश है, दान्त है, जिसका मांस और रक्त अपचित (कम) हो गया है। जो सुव्रत है, शांत है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तसपाणे वियाणेत्ता संगहेण य थावरे,  
जो न हिंसइ तिविहेण तं वयं बूम माहण। (23)

जो त्रस और स्थावर जीवों को सम्यक् प्रकार से जानकर उनकी मन, वचन और काय से हिंसा नहीं करता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं।

कोहा वा जइ वा हासा लोहा वा जइ वा भया,  
मुसं न वयई जो उ तं वयं बूम माहण। (24)

जो ऋग्वेद, हारय, लोभ अथवा भय से झूठ नहीं बोलता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

चित्तमन्तमचितं वा अप्यं वा जइ वा बहुँ,  
न गेण्हड अदत्तं जे तं वयं बूम माहण। (25)

\*\*\*\*\* हिंसमय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

जो सचित या अचित, थोड़ा या अधिक अदत्त नहीं लेता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

दिव्य-माणुस-तेरिच्छं जो न सेवइ मेहुणं,  
मणसा काय-क्ककेण तं वयं बूम माहणं। (26)

जो देव, मनुष्य और तिर्यक्य सम्बन्धी मैथुन का मन, वचन और शरीर से सेवन नहीं करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जहा पोमं जले जायं नोवलिष्पइ वारिणा,  
एवं अलितो कामेहिं तं वयं बूम माहणं। (27)

जिस प्रकार जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

अलोक्यं मुहाजीवी अणगारं अकिंचनं,  
असंसत्तं गिहत्येसु तं वयं बूम माहणं। (28)

जो रसादि में लोलुप नहीं है, जो निर्दोष भिक्षा से जीवन का निर्वाह करता है, जो गृह-त्यागी है, जो अकिंचन है, जो गृहस्थों में अनासक्त है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जहित्ता पुव्वसंजोगं नाइसंगे य बन्धवे,  
जो न सज्जइ एहि तं वयं बूम माहणं। (29)

जो पूर्व संयोगों को, ज्ञानीजनों की आसक्ति और बान्धवों को छोड़कर फिर उनमें आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं,

पसुबन्धा सव्वेदा जट्ठं च पावकम्मुणा,  
न तं तायन्ति दुस्सीलं कम्माणि बलवन्ति हा। (30)

उसी दुश्शील को पशुबन्ध (यज्ञ में वध के लिये पशुओं को बांधना) के हेतु सर्व वेद और पाप-कर्मों से किये गये यज्ञ बचा नहीं सकते क्योंकि कर्म बलवान् है।

न वि मुण्डेण समणो न ओंकारेण बम्भणो,  
न मुणी रण्णवासेण कुसचीरेण न तावसो। (31)

केवल सिर मुँडाने से कोई श्रमण नहीं होता है, ओम् का जप करने से ब्राह्मण नहीं होता है, अरण्य में रहने से मुनि नहीं होता है, कुश का बना चीवर पहनने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता है।

\*\*\*\*\* हिंसमय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

समयाए समणो होइ बम्भचेरेण बम्भणो,  
नाणेण य मुणी होइ तवेण होइ तावसो। (32)

समभाव से श्रमण होता है। ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण होता है। ज्ञान से मुनि होता है। तप से तपस्वी होता है।

कम्मुणा बम्भणो होइ कम्मुणा होइ खत्तिओ,  
बइस्से कम्मुणा होइ सुद्धो हवइ कम्मुणा। (33)

कर्म से ब्राह्मण होता है। कर्म से क्षत्रिय होता है। कर्म से वैश्य होता है। कर्म से ही शुद्र होता है।

एए पाउकरे बुद्धे जेहिं होइ सिणायओ,  
सव्वकम्मविनिम्मुक्कं त वयं बूम माहणं। (34)

अर्हत् ने इन तत्वों का प्रस्तुपण किया है। इनके द्वारा जो साधक स्नातक पूर्ण होता है, सब कर्मों से मुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

एवं गुणसमाजता जे भवन्ति दिउत्तमा,  
ते समत्था उ उद्धतुँ पर अप्पाणमेव या। (35)

इस प्रकार जो गुण-सम्पन्न होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं।

इस प्रकार संशय मिट जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष की वाणी को सम्यक्रूप से स्वीकार किया। संतुष्ट हुये विजयघोष ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा – ‘तुमने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही अच्छा उपदेश दिया है। तुम यज्ञों के यज्ञा यज्ञ-कर्ता हो, तुम वेदों को जानने वाले विद्वान हो, तुम ज्योतिष के अंगों के ज्ञाता हो, तुम्हीं धर्मों के पारगामी हो। तुम अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो। अतः भिक्षु श्रेष्ठ! भिक्षा स्वीकार कर हम पर अनुग्रह करो।’

मुनि ने कहा – मुझे भिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं है। हे द्विज! शीघ्र ही अभिनिष्क्रमण कर अर्थात् श्रमणत्व स्वीकार कर। ताकि भय के आवर्त्त वाले संसार सागर में तुझे भ्रमण न करना पड़े। भोगी संसार में भ्रमण करता है। अभोगी उससे विप्रमुक्त हो जाता है। एक गीला और एक सूखा, ऐसे दो मिट्टी के गोले फेंके गये वे दोनों दीवार पर गिरे। जो गीला था, वह वहीं चिपक गया। इसी प्रकार जो मनुष्य दुर्बुद्धि और काम-भोगों से आसक्त है, वे विषयों में चिपक जाते हैं। विरक्त साधक सूखे गोले की भाँति नहीं लगते हैं।

\*\*\*\*\* 79 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* 80 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इस प्रकार विजयघोष, जयघोष अनगार के समीप, अनुत्तर धर्म को सुनकर दीक्षित हो गया। जयघोष और विजयघोष ने संयम और तप के द्वारा पूर्व संचित कर्मों को क्षीणकर अनुत्तर सिद्धि प्राप्त की।

## दयालु रावण द्वारा हिंसात्मक - यज्ञ का विशेष

पापी मांस लोलुपी पर्वत द्वारा स्थापित, राजा वसु द्वारा अनुमोदित, दुष्ट राक्षस द्वारा परिवर्द्धित हिंसात्मक-यज्ञ को रावण पहले से ही जानता था। दिविविजय के अवसर पर रावण, स्वर्ग की तुलना करने वाले उस राजपुर नगर में पहुँचा जहाँ मरुत्वान् नाम का राजा नगर के बाहर यज्ञशाला में बैठा था। हिंसा धर्म में प्रवीण मरुत्वान् नाम का राजा नगर के बाहर यज्ञशाला में बैठा था। हिंसा धर्म में प्रवीण सर्वत नाम का प्रसिद्ध ब्राह्मण उस यज्ञ का प्रधान याजक था जो राजा के लिए विधिपूर्वक सब उपदेश दे रहा था। पृथ्वी पर जो ब्राह्मण थे वे सब इस यज्ञ में निमन्त्रित किये गये थे इसलिए लोभ के वशीभूत हो स्त्री-पुत्रादि के साथ वहाँ आये थे। लाभ की आशा से जिनके मुख प्रसन्न थे तथा जो वेद का मंगलपाठकर रहे थे ऐसे बहुत सारे ब्राह्मणों से यज्ञ की समस्त भूमि आवृत होकर क्षोभ को प्राप्त हो रही थी। सैकड़ों दीनहीन पशु भी वहाँ लाकर बाँधे गये थे। भय से उन पशुओं के पेट दुःख की साँसे भर रहे थे। उसी समय अपनी इच्छा से आकाश में भ्रमण करते हुए नारद ने वहाँ एकत्रित लोगों का समूह देखा। उसे देख नारद आश्चर्य से चकित हो, कुतूहलजनित शरीर की चेष्टाओं को धारण करता हुआ इस प्रकार विचार करने लगा। यह उत्तम नगर कौन सा है ? यह किस की सेना है ? और यह सागर के आकारकी किस की प्रजा यहाँ किस प्रयोजन से ठहरी हुई है ? मैंने बहुत से नगर, बहुत से लोगों के समूह और बहुत सारी सेनायें देखी हैं। पर कभी ऐसा जनसमूह नहीं देखा। ऐसा विचारकर नारद कुतूहलवश आकाश से नीचे उत्तरा सो ठीक ही हैं क्योंकि कुतूहल देखना ही उसका खास काम है।

अपनी इच्छा से संचार करता हुआ वह नारद किसी तरह राजपुर नगर

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

की यज्ञशाला के समीप पहुँचा और वहाँ पास ही आकाश में खड़ा होकर मनुष्यों से भरी हुई यज्ञ भूमि को देखने लगा। वहाँ बँधे हुए पशुओं को देखकर वह दया से युक्त हो यंज्ञभूमि में उतरा। वाद-विवाद करने में वह पण्डित था ही। उसने राजा मरुत्वान् से कहा कि हे राजन् ! तुमने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है ? तुम्हारा प्राणिसमूह की हिंसा का कार्य दुर्गति में जाने वालों के लिए द्वारा के समान है। इसके उत्तर में राजा ने कहा कि इस कार्य से मुझे जो फल प्राप्त होगा वह समस्त शास्त्रों का अर्थ जानने में निपुण यह (याजक) पुरोहित जानता है। नारद ने याजक से कहा कि अरे बालक ! तूने यह क्या प्रारम्भ कर रखा है ? सर्वज्ञ भगवान ने तेरे इस कार्य को दुःख का कारण देखा है। नारद की बात सुन संवर्त नामक याजक ने कुपित होकर कहा कि अहो, तेरी बड़ी मूर्खता है जो इस तरह बिना किसी हेतु के अत्यन्त असम्बन्ध बात बोलता है। तुम्हारा यह जो मत है कि कोई पुरुष सर्वज्ञ वीतराग है सो वह सर्वज्ञ वक्ता आदि होने से दूसरे पुरुष के समान सर्वज्ञ वीतराग सिद्ध नहीं होता क्योंकि जो सर्वज्ञ वीतराग है वह वक्ता नहीं हो सकता और जो वक्ता है वह सर्वज्ञ वीतराग नहीं हो सकता। अशुद्ध अर्थात् रागीद्वेषी मनुष्यों के द्वारा कहे हुए वचन मलिन होते हैं और इनसे विलक्षण कोई सर्वज्ञ है नहीं, क्योंकि उसका साधक कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। इसलिए अकर्तृक वेद ही तीन वर्णों के लिए अतीन्द्रिय पदार्थ के विषय में प्रमाण हैं। उसी में यज्ञ कार्य का कथन किया है। यज्ञ के द्वारा अपूर्व नामक ध्रुव धर्म प्रकट होता है जो जीवों को स्वर्ग में इष्ट विषयों से उत्पन्न फल प्रदान करता है। वेदी के मध्य पशुओं का जो वध होता है वह पाप का कारण नहीं हैं क्योंकि उसका निरूपण शास्त्र में किया गया है इसलिए निश्चन्त होकर यज्ञ आदि करना चाहिए। ब्रह्मा ने पशुओं की सृष्टि यज्ञ के लिए ही की है इसलिये जो जिस कार्य के लिए रचे गये हैं उस कार्य के लिए उनका विधात करने में दोष नहीं हैं। संवर्त के इतना कह चुकने पर नारद ने कहा कि तूने सब मिथ्या कहा है।

तेरी आत्मा मिथ्या शास्त्रों की भावना से दूषित हो रही है इसीलिए तूने ऐसा कहा है सुन ! तू कहता है कि सर्वज्ञ नहीं हैं सो यदि सर्व प्रकार के सर्वज्ञ का अभाव है तो शब्द सर्वज्ञ, अर्थसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ इस प्रकार सर्वज्ञ के तीन भेद तूने स्वयं अपने शब्दों द्वारा क्यों कहे ? स्ववचन से ही तू बाधित होता

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

है। यदि तू कहता कि शब्दसर्वज्ञ और बुद्धिसर्वज्ञ तो है पर अर्थसर्वज्ञ कोई नहीं है तो यह कहना नहीं बनता क्योंकि गो आदि समस्त पदार्थों में शब्द, अर्थ और बुद्धि तीनों साथ ही साथ देखे जाते हैं। यदि पदार्थ का बिल्कुल अभाव है तो उसके बिना बुद्धि और शब्द कहाँ टिकेंगे अर्थात् किसके आश्रय से उस प्रकार की बुद्धि होगी और उस प्रकार शब्द बोला जावेगा। और उस प्रकार का अर्थ बुद्धि और वचन के व्यतिक्रम को प्राप्त हो जायेगा। बुद्धि में जो सर्वज्ञ का व्यवहार होता है वह गौण है और गौण व्यवहार सदा मुख्य की अपेक्षा करके प्रवृत्त होता है। जिस प्रकार चैत्र के लिए सिंह कहना मुख्य सिंह की अपेक्षा रखता है उसी प्रकार बुद्धिसर्वज्ञ वास्तविक सर्वज्ञ की अपेक्षा रखता है। इस प्रकार इस अनुमान से तुम्हारी 'सर्वज्ञ नहीं है' इस प्रतिज्ञा में विरोध आता है तथा हमारे मत में सर्वथा अभाव माना नहीं गया है। 'पृथ्वी में जिसकी महिमा व्याप्त है ऐसा यह सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहाँ रहता है' इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि द्व्य ब्रह्मपुर में आकाश के समान निर्मल आत्मा सुप्रतिष्ठित है। तुम्हारे इस आगम में उसके स्थान आदि की चर्चा क्यों की जाती? और इस प्रकार साध्य अर्थ के अनेकान्त हो जाने पर अर्थात् कथचित् सिद्ध हो जाने पर वह हमारे लिए सिद्धसाधन है क्योंकि यही तो हम कहते हैं।

और तुमने जो कहा कि ब्रह्मा ने पशुओं की सुष्टि यज्ञ के लिए ही की है सो यदि यह सत्य है तो फिर पशुओं से बोझा ढोना आदि काम क्यों लिया जाता है? इस में विरोध आता है, विरोध ही नहीं यह तो चोरी कहलायेगी। इससे सिद्ध होता है कि रागादि भावों से उपार्जित कर्मों के कारण ही समस्त लोग अनादि संसार सागर में विचित्र दशा का अनुभव करते हैं। कर्म पहले होता है कि शरीर पहले होता है? ऐसा प्रश्न करना ठीक नहीं है क्योंकि इन दोनों का सम्बन्ध बीज और वृक्ष के समान अनादि काल से चला आ रहा है। कर्म और शरीर का सम्बन्ध अनादि है इसलिए इसका कभी अन्त नहीं होगा ऐसा कहना भी उचित नहीं है क्योंकि जिस प्रकार बीज के नष्ट हो जाने से वृक्ष की उत्पत्ति का अभाव देखा जाता है उसी प्रकार कर्म के नष्ट होने से शरीर का अभाव भी देखा जाता है। इसलिए पाप कार्य करने वालेकिसी द्वेषी पुरुष ने खोटे शास्त्र की रचना कर इस यज्ञ कार्य को प्रचलित किया है। तुम उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो और बुद्धिमान मनुष्य हो इसलिए शिकारियों के

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

कार्य के समान इस पाप कार्य में विरत होओ। यदि प्राणियों का वध स्वर्गप्राप्ति का कारण होता तो थोड़े ही दिनों में यह संसार शून्य हो जाता। और फिर उस स्वर्ग के प्राप्त होने से भी क्या लाभ है? जिससे फिर च्युत होना पड़ता है। यथार्थ में बात्य पदार्थों से जो सुख उत्पन्न होता है वह दुःख से मिला हुआ परिमाण में थोड़ा होता।

यदि प्राणियों का वध करने से मनुष्य स्वर्ग जाते हैं तो फिर प्राणिवध की अनुमति मात्र से वसु नरक में क्यों पड़ा? वसु नरक गया है इसमें प्रमाण यह है कि दुराचारी, निज औरपर का अकल्याण करने वाले दृष्टचेता ब्राह्मण, अपने पक्ष के समर्थन से प्रसन्न हो आज भी 'हे वसो! उठो, स्वर्ग जाओ' इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाते हुए अग्नि में आहुति डालते हैं। यदि वसु नरक नहीं गया होता तो उक्त मन्त्र द्वारा आहुति देने की क्या आवश्यकता थी? चूर्ण के द्वारा पशु बनाकर उसका घात करने वाले लोग भी नरक गये हैं फिर अशुभ संकल्प ने साक्षात् अन्य पशु के वध करने वाले लोगों की तो कथा ही क्या है?

प्रथम तो यज्ञ की कल्पना से कोई प्रयोजन नहीं है अर्थात् यज्ञ की कल्पना करना ही व्यर्थ है दूसरे यदि कल्पना करना ही है तो विद्वानों को इस प्रकार के हिंसा यज्ञ की कल्पना नहीं करनी चाहिए। उन्हें धर्म यज्ञ ही करना चाहिए। आत्मा यजमान है, शरीर वेदी है, सन्तोष साकल्य है, त्याग होम है, मस्तक के बाल कुश हैं, प्राणियों की रक्षा दक्षिणा है, शुक्लध्यान प्राणायाम है, सिद्ध पद की प्राप्ति होना फल है, सत्य बोलना स्तम्भ है, तप अग्नि है, चंचल मन पशु है और इन्द्रियाँ समिधायें हैं। इन सबसे यज्ञ करना चाहिए यही धर्मयज्ञ कहलाता है।

यज्ञ से देवों की तृप्ति होती है यदि ऐसा तुम्हारा ख्याल है तो यह ठीक नहीं है क्योंकि देवों को तो मनवाहा दिव्य अन्त उपलब्ध हैं। जिन्हें स्पर्श, रस, गन्ध और रूपकी अपेक्षा मनोहर आहार प्राप्त होता है उन्हें मांसादि धृणित वस्तु से क्या प्रयोजन है? जो रज और वीर्य से उत्पन्न है, अपवित्र है, कीड़ों का उत्पत्ति स्थान है तथा जिसकी गन्ध और रूप दोनों ही अत्यन्त कुत्सित हैं ऐसे मांस को देवलोग किस प्रकार खाते हैं अर्थात् किसी प्रकार नहीं खाते। ज्ञानाग्नि, दर्शनाग्नि और जठराग्नि इस तरह तीन अग्नियाँ शरीर में सदा

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

विद्यमान रहती हैं, विद्वानों को उन्हीं में दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि और आहवनीयाग्नि इन तीव्र अग्नियों की स्थापना करना चाहिए। यदि भूखे देव होम किये गये पदार्थ से तृप्ति को प्राप्त होते हैं तो वे स्वयं ही क्यों नहीं तृप्ति को प्राप्त हो जाते, मनुष्यों के होम को माध्यम क्यों बनाते हैं ? जो देव ब्रह्मलोक से आकर योनि से उत्पन्न होने वाले दुर्गन्ध्युक्त शरीर को खाता है, वह कौए, श्रृंगाल और कुत्ते के समान है।

इसके सिवाय तुम श्राद्धतपर्ण आदि के द्वारा मृत व्यक्तियों की तृप्ति मानते हो सो जरा विचार तो करो। ब्राह्मण लोग लार से भीगे हुए अपने मुख में जो अन्न रखते हैं वह मल से भरे पेट में जाकर पहुँचता है। ऐसा अन्न स्वर्गवासी देवताओं को तृप्ति कैसे करता होगा ? इस प्रकार शास्त्रों के अर्थज्ञान से उत्पन्न, देवर्षि के तेज से देवीप्रामान, उक्त कथन करते हुए नारदजी अनेकान्त के सूर्य के समान जान पड़ते थे। ब्राह्मणों ने उन्हें सब ओर से धेर लिया। उस समय वे ब्राह्मण याजक की पराजय से उत्पन्न क्रोध के भार के कम्पित थे, वेदार्थ का अभ्यास कहने के कारण उनके हृदय दया से रहित थे। सर्प के समान उनकी आँखोंकी पुतलियाँ सबको दिख रही थीं और क्षुभित हो सब ओर से बड़ा भारी कल-कल कर रहे थे। वे सब ब्राह्मण कमर कसकर हस्तपादादिकों से नारद को मारने के लिए ठीक उसी तरह तैयार हो गए जिस प्रकार कि कौए उल्लू को मारने के लिए तैयार हो जाते हैं। तदनन्तर नारद भी उनमें-से कितने ही लोगों को मुट्ठियों रूपी मुद्रगरों की मार से और कितने ही लोगों को एड़ीरूपी वज्रपान से मारने लगा। उस समय नारद के समस्त अवयव अत्यन्त शस्त्रों के समान जान पड़ते थे। उन सबसे उसने धूम-धूमकर बहुत-से ब्राह्मणों को मारता हुआ खेदभिन्न हो गया। उसे बहुत से दुष्ट ब्राह्मणों ने धेर लिया, वे उसे समस्त शरीर में मारने लगे जिससे वह परम आकुलता को प्राप्त हुआ। जिस प्रकार जाल से कसकर बँधा पक्षी अत्यन्त दुखी हो जाता है और आकाश में उड़ने में असमर्थ होता हुआ प्राणों के संशय को प्राप्त होता है ठीक वही दशा उस समय नारद की थी।

इसी बीच में रावण का दूत आ रहा था सो उसने पिटते हुए नारद को देख कर पहचान लिया। उसने शीघ्र ही लौटकर रावण से इस प्रकार कहा कि हे महाराज ! मुझ दूत को आपने जिसके पास भेजा था वह अकेला

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

के देखते हुए बहुत-से दुष्ट ब्राह्मणों के द्वारा उस तरह मारा जा रहा है जिस प्रकार की बहुत-से दुष्ट पतंगे किसी साँप को मारते हैं। मैं शक्तिहीन था और राजा को वहाँ देख भय से पीड़ित हो गया इसलिये यह दारूण वृत्तान्त आपसे कहने के लिए दौड़ा आया हूँ। यह समाचार सुनते ही रावण क्रोध को प्राप्त हुआ और वेगशाली वाहन पर सवार हो यज्ञ भूमि में जाने के लिए तत्पर हुआ। वायु के समान जिनका वेग था, जो म्यानों से निकली हुई नंगी तलवारें हाथ में लिये थे और सू-सू शब्द से सुशोभित थे ऐसे रावण के सिपाही पहले ही चल दिये थे। वे पल-भर में यज्ञभूमि में जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन दयालु पुरुषों ने दृष्टि मात्र से नारद को शत्रुरूपी पिंजड़े से मुक्त करा दिया। क्रूर मनुष्य जिस पशुओं के झुण्ड की रक्षा कर रहे थे उसे उन्होंने आंख के इशारे मात्र से छुड़ा दिया। यज्ञ के खम्भे तोड़ डाले, ब्राह्मणों की पिटाई लगायी और पशुओं को बन्धन से छोड़ दिया। इन सब कारणों से वहाँ बड़ा भारी कोलाहल मच गया। ‘अब्रहमण्य’ ‘अब्रहमण्य’ की रट लगाने वाले एक-एक ब्राह्मण को इतना पीटा कि जब तक वे निश्चेष्ट शरीर होकर भूमि पर गिर न पड़े तब तक पीटते ही गये। रावण के योद्धाओं ने उन ब्राह्मणों से पूछा कि जिस प्रकार आप लोगों को दुःख अप्रिय लगता है और सुख प्रिय जान पड़ता है उसी तरह इन पशुओं को भी लगता होगा। जिस प्रकार तीन लोक के समस्त जीवों को हृदय से अपना जीवन अच्छा लगता है उसी प्रकार इन समस्त जन्तुओं की भी व्यवस्था जाननी चाहिए।

आप लोगों को जो पिटाई लगी है उससे आप लोगों की यह कष्टकारी अवस्था हुई है फिर शस्त्रों से मारे गये पशुओं की क्या दशा होती होगी सो आप ही कहो। अरे पापी नीच पुरुषों ! इस समय तुम्हारे पाप का जो फल प्राप्त हुआ है उसे सहन करो जिससे फिर ऐसा न करोगे। देवों के साथ इन्द्र भी यहाँ आ जाये तो भी हमारे स्वामी के कुपित रहते तुम लोगों की रक्षा नहीं हो सकती। हाथी, घोड़े, रथ, आकाश और पृथ्वी पर जो भी जहाँ स्थित था वह वहाँ से शस्त्रों द्वारा ब्राह्मणों को मार रहा था। और ब्राह्मण चिल्ला रहे थे कि ‘अब्रहमण्य’ बड़ा अनर्थ हुआ। हे राजन् ! हे माता यज्ञपालि ! हमारी रक्षा करो ! हे योद्धाओं ! हम जीवित रह सकें इसलिए छोड़ दो, अब ऐसा नहीं करेंगे। इस प्रकार दीनता के साथ अत्यन्त विलाप करते हुए वे ब्राह्मण

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

चूहे – जैसी दशा को प्राप्त थे फिर भी रावण के योद्धा उन्हें पीटते जाते थे। तदनन्तर ब्राह्मणों के समूह को पिटता देख नारद ने रावण से इस प्रकार कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो । मैं इन दुष्ट शिकारी ब्राह्मणों के द्वारा मारा जा रहा था जो आपने मुझे इनसे छुड़ाया है। यह कार्य चूँकि ऐसा ही होना था सो हुआ अब इन पर दया करो। ये क्षुद्र जीव जीवित रह सके ऐसा करो, अपना जीवन इन्हें प्रिय है।

अथानन्तर नीति के जानकार राजा मरुत्वन के हाथ जोड़कर तथा सिर के बाल जमीन पर लगाकर रावण को प्रणाम किया और निम्नांकित वचन कहे हे लंकेश ! मैं आपका दास हूँ । आप मुझ पर प्रसन्न होइये। अज्ञानवश जीवों से खोटे काम बन ही जाते हैं मेरी कनक प्रभा नाम की कन्या है सो इसे आप स्वीकृत कीजिए क्योंकि सुन्दर वस्तुओं के पात्र आप ही हैं । नप्र मनुष्यों पर दया करना जिसका स्वभाव था और निरन्तर जिसका अभ्युदय बढ़ रहा था ऐसे रावणने कनकप्रभा को विवाहता स्वीकृत पर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह कर लिया राजा मरुत्वन ने संतुष्ट होकर रावण के सामन्तों व योद्धाओं का वस्त्र व अलंकार से सत्कार किया।

(पद्मपुराणम्, पेज नं. 245 से 262)

## बौद्ध धर्म में यज्ञों का खण्डन

अरिट्ठ ने चौदह गाथाओं में ब्राह्मणों की, यज्ञों की तथा वेदों की प्रशंसा की। उसका यह कहना सुन, बोधिसत्त्व की रोगी सुश्रुषा के लिये आये हुए बहुत से नाग ‘यह सत्य ही कहता है’ मान उसके मिथ्या-विश्वासी से हो गये। बोधिसत्त्व ने रोगी-शय्या पर पड़े ही पड़े वह सब सुना। नागों ने भी उसे कहा। तब बोधिसत्त्व ने सोचा ‘यह अरिट्ठ मिथ्या-मत की प्रशंसा कर रहा है। इसके मत का खण्डन कर जनता को सत्य-मतानुयायी बनाऊंगा।’ उसने उठकर स्नान किया और सब अलंकारों से अलंकृत हो धर्मासन पर बैठ, सारी नाग-परिषद् को एकत्र कर, अरिट्ठ को बुलाकर कहा – “अरिट्ठ ! तू मिथ्या बात कहकर वेदों और यज्ञ की प्रशंसा कर रहा है। वेद-विधि के अनुसार जो ब्राह्मण का यज्ञ

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

करना है वह अनिष्टकर है, स्वर्ग ले जाने वाला नहीं है। अपने मत की असत्यता देख,’ उसने यज्ञों का खण्डन करते हुये कहा –

कलिं हि धीरानं कटं भगानं, भवन्ति वेदज्ञगता नरिट्ठ,  
मरीचिधम्मं असमेक्षितत्ता, मायागुणा नातिवहन्ति पञ्जं । (123)

हे अरिट्ठ वेदाध्ययन धैर्यवान पुरुषों का दुर्भाग्य है, और मूर्खों का सौभाग्य है। यह (वेदत्रय) मृगमरीचिका के समान है। सत्यासत्य का विवेक न करने से मूर्ख इन्हें सत्य मान लेते हैं। ये मायावी (वेद) प्रज्ञावान को धोखा नहीं दे सकते।

वेदा न ताणाय भवन्तिनरस्स मित्तदूनो यूनहुनो नरस्स,  
न तायते परिचिण्णोच अग्नि, दोसन्तरं मध्यं अनरियकम्म । (124)

मित्र-द्रोही और जीवनाशक (भूून हत्यारे ?) को वेद नहीं बचा सकते। द्वेषी अनार्यकर्मी आदमी को अग्नि-परिचर्या भी नहीं बचा सकती।

सत्ये च मच्चा सघना सभोगा, आदीपितं दाहु तिनेन मिस्सं  
दहं न तप्ये असमत्यतेजो, को वं सुभिक्खं दिरसञ्ज कुरिया। (125)

यदि आदमी अपने सारे धन और सारे भोगों को लकड़ी और घास से मिलाकर जला डालें तो भी इस आग की तृप्ति नहीं होती है द्वि (?) रसज्ज। इस आग को कौन पर्याप्त भोजन दे सकता है ?

यथापि खीरं विपरिणाम धम्मं, दधि भवित्वा नवनीतम्पि होति,  
एवम्पि अग्नी विपरिणाम धम्मो, तेजो समोरोहति योगयुतो । (126)

जिस प्रकार दूध परिवर्तनशील है, दही होकर मक्खन भी हो जाता है, उसी प्रकार अग्नि भी परिवर्तनशील है। वह दो अरणियों के संघर्ष से उत्पन्न हो जाती है।

न दिस्सते अग्निमनुप्पविट्ठो, सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि  
नामन्थमानो अरणी नरेन, नाकम्ना जायति जातवेदो। (127)

जब तक आग सूखी वा नयी लकड़ी के ऊपर से न डाली गयी हो, तब तक कहीं नहीं दिखायी देती जब तक आदमी ने अरणियों को न रंगड़ा हो, तब भी नहीं दिखायी देती। जब तक कोई ऐसा आदमी जिसके पास आग हो, आग पैदा करने का कर्म न करें, तब तक आग पैदा नहीं होती।

सचेहि अग्नि अन्तरतो वसेद्य, सुक्खेसु कट्ठेसु नवेसु चापि  
सब्बानि सुस्तेद्यु वनानिलोके, सुक्खानि कट्टानि च पञ्चालेद्यु । (128)

\*\*\*\*\* 88 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

यदि नवी या सूखी लकड़ी के अन्दर ही आग हो, तो संसार के सारे जंगल सूख जायें और सूखी लकड़ी में आग लग जाये।

करोति चे दारु तिणेन पुञ्जं, भोज नरो धूमसिखिं पतापवं,  
अंगारिका लोणकरा च सूदा, सरीरदाहापि करेयु, पुञ्जं । (129)

यदि आदमी प्रतापी आग को लकड़ी घास खिलाने से 'पुण्य' करता हो, तो कोयले बनाने वाले, नमक बनाने वाले, भोजन बनाने वाले और शमशान में मृत-शरीर जलाने वाले, सभी पुण्य ही करते हैं।

अथ चेहि एते न करोन्ति पुञ्जं, अच्छेन मगिं इध तप्पयित्वा,  
न कोचि लोकस्मिं करोति पुञ्जं, भोजं नरो धूमसिखिं पतापवं । (130)

यदि ये 'पुण्य' नहीं करते, तो फिर संसार में कोई भी आदमी वेद-मन्त्रों से आग को भोजन कराने वाला 'पुण्य' नहीं करता।

कथं हि लोकापचितो समानो, अमनुञ्जंगन्धं बहुन्नं अकन्तं  
यदेव मच्चा परिवज्जयन्ति, तदप्पसत्यं दिरसज्जे भुञ्जे । (131)

हे छिरसज्ज ! यह कैसे है कि जिसे तुम संसार में 'पूज्य' कहते हो, वह ऐसी अप्रिय, असुन्दर वस्तुओं का भोजन करें, जिन्हें सामान्य प्राणी त्याग देते हैं।

सिखिं हि देवेसु वदन्तहेके, आपं मिलक्खा पन देवमाहु,  
सब्बेव एते वितर्थं भणन्ति, अग्नि न देवञ्जतरो न चापो । (132)

कुछ कहते हैं कि अग्नि 'देवता' है, कुछ म्लेच्छ (मिलक्ख) कहते हैं कि 'पानी' देवता है। यह सभी अयथार्थ कहते हैं। न अग्नि 'देवता' है और न पानी 'देवता' है।

निरिन्द्रिय सन्तं असञ्जंकायं, वेस्सानरं कम्मकरं पजानं,  
परिचरियमगिं सुगतिं कथवजे, पापानिकम्मानि पकु व्वमानो । (133)

जो इन्द्रिय रहित है जो चेतना रहित है, जो लोगों का खाना पकाना आदि काम करती है, उस अग्नि की परिचर्या करने से कोई भी पापी किस प्रकार स्वर्ग जा सकता है ?

सब्बाभिभूताहु ध जीविकत्था, अग्निस्स ब्रह्मा परिचारकोति,  
सब्बानु भावी च वसी किमत्थं, अनिम्मितो निम्मितं वन्दितस्स । (134)

अपनी जीविका चलाने के लिये (ब्राह्मणों ने पहले तो) कहा कि ब्रह्मा सबको अभिभूत करने वाला है (तथा सारे लोक का निर्माता है) और फिर

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

यह भी कहा कि ब्रह्मा भी 'अग्नि' की पूजा करता है। जब वह सर्वश्रेष्ठ हैं और सब उसी के वश में हैं तो वह स्वयं किसी के द्वारा अनिर्मित होता हुआ भी अपनी ही निर्मित अग्नि की क्यों पूजा करता है।

हसं अनिज्ञान खमं अतच्छं, सक्कारहेतु पकिरिसुं पुब्बे,  
वे लाभसक्करे अपातु भोन्ते, सन्ध्यमित्ता जन्तुहि सन्तिधम्मं । (135)

यह हँसी का विषय है, यह गम्भीरतापूर्वक विचार करने योग्य नहीं है, यह असत्य है। पूर्व समय में (ब्राह्मणों) ने सत्कार-प्राप्ति के हेतु ही इन बातों का प्रचार किया है। जब उन्हें पर्याप्त लाभ-सत्कार न मिला तो उन्होंने उस (कथन) में पशुओं को भी सम्मिलित करके (अर्थात् पशुबलि का प्रतिपादन कर) अपने शान्ति-धर्म को जड़ बना दिया।

अच्छेनमरिया पठविं जनिन्दा, वेस्सा कर्सि परिचरियं च सुदा,  
उपागु पच्चेक यथा पदेसं, कताहु एवे वसिनाति आहु । (136)

और यह जो कहा – उस महाब्रह्मा ने इन्हें बनाया और ब्राह्मणों के लिये अध्ययन, क्षत्रियों के लिये राज्य जीतना, वैश्यों के लिए कृषि तथा शूद्रों के लिये (तीनों वर्णों की) सेवा का विधान बनाया। ये नियमानुसार अपने-अपने कर्म को प्राप्त हुये।

एतज्च सच्चं भवेद्य, यथा इदं भासितं ब्राह्मणेहि,  
नाखत्तियो जातु लभेथ रजं, नाव्राह्मणो मन्तपदानि  
सिक्खे, नाज्जत्र वेस्सहि कसिं करेय । सुददो न मुञ्चे परयेस्सताय । (137)

यदि इन ब्राह्मणों का यह कहना सत्य हो तो किसी अक्षत्रिय को कभी राज्य प्राप्त न हो, कोई अब्राह्मण कभी (वेद) मन्त्र न सीखे और वैश्यों के अतिरिक्त कभी कोई खेती न करे और शूद्र कभी दूसरों की सेवा करने से मुक्त न हो।

यस्मा च एवं वचनं अभूतं, मुसाचिमे ओदरिया भणन्ति,  
तदप्पपञ्जा अभिसद्हन्ति, परस्ति तं पण्डिता अत्तभावं । (138)

इनका यह कथन ठीक नहीं है और पेट के लिये यह झूठ बोलते हैं। पूर्ख लोग इनके कहने का विश्वास कर लेते हैं, लेकिन जो पण्डित हैं वे स्वयं ख लेते हैं कि यह कथन कितना सदोष है।

खत्या न वेस्सा न वलिं हरन्ति, आदाय सत्थानि चरन्ति ब्राह्मणा  
तं तादिसं संखुभित्तं, कस्मा ब्रह्मा नुज्जुकरोति लोकं । (139)

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

क्षत्रिय और वैश्य 'बलि' नहीं देते हैं और ब्राह्मण शस्त्र लिये धूमते हैं। इस प्रकार 'गड़बड़' लोक को ब्रह्मा क्यों नहीं ठीक करता है?

सचे हि सो इस्सरो सब्ब लोके, ब्रह्मा वहू भूतपति पजानं  
माया मुसावज्जमदेन चापि, लोकं अधम्मेन किमत्थकासि । (140)

यदि वह ब्रह्मा सब लोगों का 'ईश्वर' है और सब प्राणियों का स्वामी है, तो उसने लोक में यह माया, झूठ, दोष और मद क्यों पैदा किये हैं?

सचे हि यो इस्सरो सब्ब लोके, ब्रह्मा वहू भूतपती पजानं  
अथम्मियो भूतपती अरिट्ट, धम्मे सति यो विद्वी अधम्म । (141)

यदि वह ब्रह्मा सब लोगों का 'ईश्वर' है और सब प्राणियों का स्वामी है, तो हे अरिट्ट! वह स्वयं अधार्मिक है, क्योंकि उसने 'धर्म' के रहते 'अधर्म' उत्पन्न किया।

कीटा पतंगा उरगा च भेका, हन्त्या किमिं सुच्छति मव्विकाच,  
एते हि धम्मा अनरियरूपा, कम्बोजकामं वितथा वहुन्नं । (142)

कीट, पतंग, साँप, मेंढक तथा कीड़े और मक्खी मारने से प्राणी शुद्ध होते हैं। ये अनार्य धर्म अधिकतया काम्बोजों में प्रचलित हैं इन्हीं का मिथ्यापन स्पष्ट करते हुये आगे कहा –

सचे हि सो सुज्जति यो हनाति हतो पि सो सग्गमुपेति ठान,  
भोवादि भोवादिनमारभेयुं येवापि तेसं अभिसदहेयुं । (143)

यदि हत्या करने वाला स्वर्ग जाता है और जिसकी हत्या होती है वह भी स्वर्ग जाता है, तो फिर ब्राह्मणों को ब्राह्मणों की हत्या करनी चाहिये और उन्हें उनका विश्वास करना चाहिये।

नेव मिगा न प्यसू नोपि गावोंआयाचन्ति अत्तवधाय केचि,  
विष्फन्दमानं इध जीवकत्या यज्जेसु पाणे पसुमाहरिन्त । (144)

न मृग, न पशु और न गौवें ही आत्मवध की याचना करती हैं जीविका के लिए ही यज्ञों में तड़पते हुए प्राणियों की हत्या की जाती है।

यूपस्स ते पसुवन्धे च बाला चित्तेहि वण्णेहि मुखं नयन्ति,  
अयं ते यूपो कामदुहो परत्य भविस्सति सस्तो सम्परायं । (145)

वे मूर्ख विचित्र-विचित्र बातें बनाकर यजमान को ठगते हैं कहते हैं तूने 'यूप' के साथ पशुओं को बाँधा है यह यूप परलोक में तेरी सब कामनाये पूरी करने वाला होगा।

\*\*\*\*\* 91 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

सचे च यूपे मणि संखमुत्तं धञ्जं धनं रजतं जातरूपं,  
सुक्खेसु कट्टेसु नवेसु चापि सचे दुहे तिदिवे सब्बकामे,  
तेविज्जसंघा च युथू यजेयुं न ब्राह्मण कज्ज्य तं याजपेयुं । (146)

यदि 'यूपो' में मणि शंख, मुक्ता हो धान्य, धन सोना-चाँदी हो अथवा सूखे या नये काष्ठ में ही ये सब हो स्वर्ग में सब कामनाओं की पूर्ति होती हो तो त्रिवेदज्ञ-ब्राह्मण पृथक् होकर यज्ञ करे, वे दूसरे ब्राह्मणों से यज्ञ न कराये।

कुतो च यूपे मणि संखमुत्तं धञ्जं धनं रजतं जातरूपं,  
सुक्खेसु कट्टेसु नवेसु चापि कुतो दुहे तिदिवे सब्बकामे । (147)

कहाँ यूपो में मणि, शंख और मुक्ता रखा है। कहाँ धान्य, धन तथा सोना-चाँदी रखा है? कहाँ सूखे अथवा नये काठ में ही रखा है? और कहाँ परलोक में सब कामनाओं की पूर्ति रखी है।

सठी च लुदा उपलद्धवाला चित्तेहि वण्णेहि मुखं नयन्ति,  
आदाय अग्निं मम देहि वित्तं ततो सुखी होहिसि सब्बकामे । (148)

वे शठ लोभी और मृर्ख ब्राह्मण सीधे-सादे लोगों को पाकर तरह-तरह की बातों से उन्हें जाने हैं, कहते हैं – तू आग ले और हमें धन दे। तू सूखी होगा।

तमग्गिङ्गहुत्तं सरणं पविस्स चित्तेहि वण्णेहि मुखं नयन्ति,  
आरोपयित्वा के समस्तु नखञ्च वेदेहि वित्तं अतिगालयन्ति । (149)

वे उन्हें अग्निशाला में प्रविष्ट करा नाना प्रकार की बातों से ठगते हैं उनकी दाढ़ी बाल और नख कटवाकर 'वेद' के नाम पर उनका बहुत धन ले लेते हैं।

काका उलूकं च रहो लभित्वा एकं समानं वहुका समेच्चा,  
अन्नानि भुत्वाकुहकाकुहित्वामुण्डकत्वायज्जपथोस्तजन्ति । (150)

जिस प्रकार बहुत से कौवे एक अकेले उल्लू को अकेला पाकर (नोच डालते हैं) उसी प्रकार यह ब्राह्मण अन्न खाकर, यज्ञों की झूठ-मूठ प्रशंसा करके (यजमान को) लूटकर, यज्ञ मण्डल छोड़ देते हैं।

एवं हि सो वंचितो ब्राह्मणेहि एको समानो वहुदी समेच्चा  
ते योगयोगेन विलुम्यमाना दिट्ठं अदिट्ठेन धनं हरन्ति । (151)

\*\*\*\*\* 92 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

इसी प्रकार वह अकेला बहुत से एकत्र हुए ब्राह्मणों द्वारा ठगा जाता है। वे (ब्राह्मण) उसे नाना उपायों से ठगकर 'अदृष्ट' का लालच देकर उसका साक्षात् धन लूट लेते हैं।

अकासिया राजूहि चानुसिट्ठा तदस्स आदाय धनं हरन्ति,  
तेतादिसाचोऽसमा असन्तावज्ञानहज्जन्ति अरिट्ठलोके। (152)

जिस प्रकार राजज्ञा से टैक्स लेने वाले 'अकासी' नामक राज-कर्मचारी धन ले जाते हैं, उसी प्रकार ये (ब्राह्मण) भी धन ले जाते हैं ये ऐसे असंयमी हैं, चोरों के समान हैं, वध करने योग्य हैं, किन्तु आश्चर्य है, लोक में इन्हें मारा नहीं जाता।

इन्द्रस्स वाहार सिद्धिखण्णाति यज्ञेसु छिन्दन्ति पत्तासयट्ठिं  
तं चेपि सच्चं मधवा छिन्नवाहु के नस्स इन्द्रो असुरे जिनाति। (153)

फिर ये ब्राह्मण 'यह इन्द्र की दाहिनी बाँह है' कहकर पलास की लकड़ी तोड़ते हैं। यदि यह बात सत्य है, तो छित्र-बाहु इन्द्र असुरों को किस प्रकार जीतता है?

तथ्येव तु च्छं मधवा समंगी हन्ता अवज्ञो परमो सदेवो  
मन्ता इम ब्राह्मण तु च्छरूपा सन्दिट्ठका वंचना एस लोके। (154)

यदि इनका उक्त कथन असत्य है और सदैव इन्द्र सर्वश्रेष्ठ है, (दूसरों को) मारने वाला है, अवध्य है, तो इन ब्राह्मणों के मन्त्र निस्सार हैं। यह तो दुनिया में साक्षात् ठगी है।

मत्ता गिरि हिमवा यो च गिज्ञो सुदस्सनो निसमो काकनेरु,  
एतेच अज्जेच नगा महन्ता चित्या कता यज्जकरेहि माहु। (155)

और यह जो कहा जाता है कि मालागिरि, हिमालय, गृद्धकूट, सुदर्शन, निसभ तथा काकानेरु आदि जितने पर्वत हैं वे याज्ञिकों के लिये चुनकर बनाये गये आसनों से ही बढ़कर पर्वत हो गये हैं।

यथप्यकारानिहि इट्ठकानि चित्या कता यज्जकरेहि माहु,  
नपव्वता होन्ति तथप्यकारा अज्जादिसा अचला तिट्ठसेला। (156)

जिस प्रकार की ईटों से याज्ञिकों द्वारा चित्यायें बनायी जाती हैं, उस प्रकार के पर्वत नहीं होते। स्थिर शैल पर्वत दूसरी ही तरह के होते हैं।

न इट्ठका होन्ति सिला चिरेनपि न तत्थ सञ्जयति अयो न लोहं  
यज्ञे च एतं परिवर्णयन्ता चित्या कता यज्जकरेहि माहु। (157)

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

चिरकाल में भी ईटें शिलायें नहीं बनती, अयस (ताँबा) लोहा नहीं बनता। किन्तु यह यज्ञों की प्रशंसा करने वाले कहते हैं कि ये (पर्वत) याज्ञिकों के लिये चुने गये आसनों से बने हैं।

अज्जायकं मन्तगुणपूपन्तं तं पस्तिसनं याचयोगोत्तिमाहु,  
तीरे समुद्रसुदकं यजन्तं तं सागरज्ञोहरि तेनपेयो। (158)

फिर कहते हैं – यह सागर एक अध्यापक, वेद (मन्त्र) पाठी, तपस्वी याज्ञिक ब्राह्मण को जब वह किनारे पर खड़ा अपने शरीर पर से पानी बहा रहा था, बहा ले गया। (उसी से क्रुद्ध हो महाब्रह्मा ने शाप दे दिया ओर) यह समुद्र लवण-रस तथा अपेय हो गया।

परोसहस्रस्मिं समन्तवेदे मन्तुपपन्ने नदियो वहन्ति,  
न तेन व्यापन्न रसूदकानं कस्मा समुद्रो अतुलो अपेयो। (159)

सवेद, मन्त्रधारी हजारों ब्राह्मणों को नदियाँ बहा ले जाती हैं। उससे नदियों का पानी खारा नहीं होता तो महान् समुद्र ही अपेय क्यों हो गया?

ये केचि कूपा इधं जीवलोके लोणुदका कूपखणेहि खाता,  
न ब्राह्मणज्ञोहरणे तेसु आपो अपेयो दिरसञ्ज राहु। (160)

दुनिया में कुयें खनने वालों ने जितने खारे कुयें खोदे हैं, है द्विरसज्ज ! यह नहीं कहा जाता कि ब्राह्मण को बहा ले जाने के कारण ही उनका पानी खारा है।

पुरे पुरत्था का कस्स भरिया मनो मनुस्सं अजनेसि पुब्वे,  
तेनापि धम्मेन न कोचि हीनो एवम्पि वो सग्ग विभाग माहु। (161)

सृष्टि के आरम्भ में कौन किस की भार्या थी? उस अत्यन्त आरम्भिक काल में मनुष्यों की मनोमय उत्पत्ति थी इस बात का विचार करै तो भी कोई हीन नहीं है ये विभाग अपने-अपने कर्मानुसार ही हैं।

चाण्डालपुत्तो पि अधिच्च वेदे भासेय मन्ते कुसलो मुतीमा  
न तस्स मुद्रा विफलेय सत्तधा मन्ता इमे अत्तवधाय कता। (162)

यदि कोई बुद्धिमान चण्डाल-पुत्र भी वेदों को पढ़कर उनका पाठ करता है, तो उसका सि र सात टुकड़े नहीं हो जाता है। ब्राह्मणों के ये मन्त्र उन्हें झूठा सिद्ध कर उन्हीं का वध करते हैं।

वाचाकता गिद्धिकता गहीता दुम्मोचया कव्यपथानुपन्ना,  
वालान चितं विसमे निविट्ठं तदपपञ्ज अभिसदूदहिन्त। (163)

\*\*\*\*\*

\*\*\*\*\*

ये मन्त्र मिथ्याचिन्तन के परिणाम हैं। ये लोभी ब्राह्मणों द्वारा गृहीत हैं। ये (मछली के काँटे के समान) निकलते नहीं ये कवि ब्राह्मणों के मुँह से निकलते हैं। इनसे मूर्खों का मन कुमार्ग में जाता है इनमें अल्प-प्रज्ञा लोग ही विश्वास करते हैं।

सहिस्स व्यंद्यस्स च दीपिनो च न विज्ञाति पोरिसियं बलेन,  
मनुस्सभावो च गवंव पेवखो जाति हि तेसं असमा समाना। (164)

इन ब्राह्मणों का शरीर-बलसिंह, व्याघ्र तथा चीते के समान नहीं हैं ये मनुष्य हैं किन्तु इन्हें बैल के समान समझना चाहिये। क्योंकि इनकी जाति ही 'असम' है।

सचे च राजा पठिं विजित्वा सजीव वा असव्यो पारिसज्जो  
सयमेव सो सत्तुसंघं विजेय्य तस्स पजा निच्छसुखी भवेय्य। (165)

यदि ब्राह्मणों के कथनानुसार ब्रह्मा ने ही क्षत्रियों का निर्माण किया है तो राजा पृथ्वी को जीत ले और अपने अमात्यों तथा परिषद् की सहायता के बिना स्वयं ही शत्रुओं को जीत ले और उसकी प्रजा सुखपूर्वक रहे। (किन्तु ऐसा नहीं होता)?

खत्तियमन्ता च तयो चवेदा अत्थेन एते समका भवन्ति,  
तेसञ्च अत्थं अविनिच्छनित्वा न बुज्ज्ञति ओद्यपंथक छन्न। (166)

क्षत्रिय मन्त्र (राजनीतिशास्त्र) और तीनों वेद अर्थ की दृष्टि से यह समान ही है। उनका अर्थ बाढ़ से ढके हुये रास्ते की तरह स्पष्ट नहीं है।

खत्तियमन्ता च तयो च वेदा अत्थेन एते समका भवन्ति  
लाभो अलाभो अयसो यसो च सब्वे ते सब्वे सं चतुन्नं धम्मा। (167)

क्षत्रिय मन्त्र और तीनों वेद अर्थ की दृष्टि से ये समान ही है लाभ, अलाभ, यश, अयश – ये लोक धर्म चारों वर्णों के लिये समान हैं।

यथापि इव्भा धनधञ्जहेतु कम्मानि कारेन्ति युथ पथव्या  
तेविज्जसंधापि तथेव अज्ज कम्मानि कारेन्ति पुथू पथव्या। (168)

जिस प्रकार दूसरे गृहस्थ धन धान्य के लिये दुनिया में नाना प्रकार के कर्म करते हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण भी आज लोक में नाना प्रकार के व्यवसाय करते हैं।

इव्वेहि एते समका भवन्ति निच्छुस्सुका कामगुणसु युत्ता  
कम्मानि कारेन्ति पुथू पथव्या तदप्पञ्ज दिरसज राते। (169)

ये (अन्य) गृहस्थों के ही समान हैं, नित्य काम-भोगों के लिये उत्सुक रहते हैं, ये पृथ्वी पर नाना प्रकार के कर्म करते हैं। हे द्विरसज ! ये अल्प-प्रज्ञा धर्म से दूर हैं।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने उनके मत का खण्डन कर अपने मत की प्रतिष्ठा की। उसकी धर्म कथा सुन नाग परिषद् प्रसन्न हुई। बोधिसत्त्व ने नेषाद ब्राह्मण को नाग भवन से निकलवा दिया। उसका मजाक तक नहीं उड़ाया गया।

(जातक – VI) पृ. 216 से 227

## उपनिषद् में वर्णित यज्ञ

हरि ॐ। चित्त की अस्थिरता के दो ग्रहण होते हैं, एक वासना, दूसरा श्वास (प्राण) इनमें से एक के नष्ट हो जाने पर दूसरा आदि दर्शनों के ज्ञान के संसार की निवृत्ति (संसार से निवृत्ति) पराइ मुखता (मोक्ष प्राप्ति) हो जाती है। बाह्य प्राणाग्नि – होत्र की विधि अपनी विधि के अनुसार पृथ्वी में बनाई वेदिका में शाकयुक्त अन्न खाकर 'ये ओषधय' या फलिनी – जीवला नद्यारिषाँ – 'इन तीन तथा' अन्नपते अन्नस्य – यदन्मग्नि – इन दो से अभिमन्त्रित करे। अब क्रमशः वे उपर्युक्त तीन व दो क्रचार्द लिखी जाती हैं – जो सोम देवता प्रधान शतवीर्य बहुशाखा वाली वृहपति प्रसूत औषधियाँ हैं वह हमें पाप मुक्त कर दें। जो फल युक्त, फलहीन, पुष्पहीन अथवा पुष्प। (फूल) युक्त बृहस्पति प्रसूत (उत्पन्न औषधियाँ हैं, वह हमें पापमुक्त कर दें। इन दो मन्त्रों यथा जीवला – रक्षांसि यांतुर्यान् – इस तीसरे मन्त्र द्वारा एवं अन्नपते – द्विपदे चतुष्पदे यदग्निना – ईशानाय स्वाहा इन दो मन्त्रों से अभिषेक करना चाहिए। अर्थात् क्रमशः दिये इन पांच से उस पिण्ड पर जलाभिषेक करना चाहिए।

इन मन्त्रों से अन्न को छूकर अभिमन्त्रित कर दाहिने हाथ में जल लेकर 'अन्न श्वरसि' – 'अपः पुनीत' इन दो मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर अन्न का प्रोक्षण करें (जल के छींटे दे) प्राणियों के हृदय में, सर्वतोमुखरूप होकर (सर्वत्र व्यापक) स्थित है, भ्रमण करता है। तू ही यज्ञ ब्रह्म, रूप, विष्णु वषट्कार, जल, राशि, ज्योति रस, अमृत, ब्रह्म तथा भूर्भुवः एवं स्वः है, तुझे नमस्कार है। हे जल ! तुम पृथिवी को पवित्र करो और पवित्र हूई जो पृथिवी है वह मुझे पवित्र

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

करे । ब्रह्मण स्पति भी पवित्र करें, ब्रह्मपूत् पृथ्वी मुझे पवित्र करे । जो उच्छिष्ट अभक्ष्य या दुश्चरित मेरा हो, उन सबको जल पवित्र कर दें और पापों को रोक दें इस प्रकार प्रोक्षण करके दो बार अभिषेक कर बाँये हाथ से वेदिका को छूता हुआ दाहिने हाथ में ग्रहण कर ‘अमृतभर्त्त्व-मृतोपस्तरणमसि’ यह कह कर उसे पीकर ‘अमृत प्राणे होम्यभाशिष्वन्नोसि’ यह कहकर उसे पीकर ‘अमृतोपम होम करने योग्य वस्तु को तूने आस्वादित किया है । यह समझ आमानुसन्धान पूर्वक प्राण में आहुतियाँ करे – ॐ प्राण, आपन, उदान, समान, व्यान ये इन आहुतियोंकों प्राप्त करे । ब्रह्म भी आहुतियाँ प्राप्त करें । ब्रह्म में मेरी आत्मा अमृतत्व का आस्वादन करें ।

कनिष्ठिका अंगुली तथा अंगूठे से प्राण में, अनामिका से अपान में मध्यमा से व्यान में सभी अंगुलियों से उदान में, तर्जिनी से समान में आहुति डाले (कल्पना करो) मौन होकर एक आहुति ‘प्राणाय स्वाहा’ उस एक ऋचा से ‘अपानाय स्वाहा’ ये दो आहुतियाँ आहवनीय में होम करे । एक दक्षिणाग्नि, एक गार्हयन्य तथा एक सर्व प्रायशिच्तीय अग्नि में होम करे इस प्रकार पाँच आहुतियाँ करके यथा नियम खाकर (आहुति शेष) ‘अथ पुरस्नात् चीप रिष्टाच्च अद्भिः परिदधाति’ इति श्रुति के अनुरोधों से अपिधान स्वरूप को अमृतत्व के लिए छूकर फिर ग्रहण कर पुनः स्पर्श करे । बाँये हाथ में जल ग्रहण कर हृदयालम्भन कर (हृदय के पास हाथ रखे) जब करे तथा मुख्य प्राण ही अग्नि है स्वगत विशेष अंशों की समाप्ति पर वही परमात्मा है विराट् आदि स्थानीय पाँच वायुओं द्वारा आवृत्त है । मुझे प्राणियों से अभय प्रदान करे, मुझे उनसे कभी भय उत्पन्न न हो । हे मुक्त प्राण ! व्यष्टि (एक-एक) समष्टि (समूह रूप) उपाधि भेद से तू ही विश्वे (व्यावहारिक वैश्वानर विराट् होकर विश्व रूप को धारण करता है वह वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः । जिस रूप में कि तू ब्रह्मामृत स्वरूप है, तेरे से प्रादुर्भूत होने वाला विश्व तो तुरीयाग्नि में सभी आहुतियाँ हो जाता है । विलीन हो जाता है ।

‘त प्रपादभ्याँ प्रापद्यत्ब्रह्मेम् पुरुषम्’ इस श्रुति के अनुरोध से जो पैर के दोनों अंगूठों के आगे प्राणरूप से प्रतिष्ठित है वहाँ तू प्रतिक्षण अभिनव (नया-नया) पुरुष होता है अर्थात् नित्य नवीन रूप में रहता है । इस भोजन के (प्राशन के) अन्त में अमृतत्व की प्राप्ति के लिए उस व्यापक अन्न जल द्वारा सिंचित करता हूँ (अर्थात् उच्छवास निवास रूप से अभिषिक्त करता

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

हूँ तेरा अभिषेक करता हूँ ये चेष्टा विशिष्ट है अतः ब्राह्मात्मा इन का ध्यान करे वह पुरुष प्रतिदिन प्राणरूपी अग्निहोत्र करता है क्योंकि सभी तुङ्ग परमात्मा (अग्निरूप का पुत्रवत् पोषण करते हैं अतः तू सबका शरीर में यज्ञ की कल्पना की जाती है इन शरीर निर्वर्त्य अग्नियों की संख्या चार है । उनका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म छोटा है ये सब अर्धमात्रिक मात्र हैं इन चार में से सूर्याग्नि नामक जो कि सूर्य मण्डल की आकृति का है हजारो अत्यन्त तेजस्वी किरणों से युक्त व्यापक रूप होकर सिर में स्थित रहता है जैसे कि प्रसिद्ध है ‘तुरीय’ मूर्च्छिं संस्थितम् । क्योंकि यह जीवात्मा सर्वज्ञ ईश्वर रूप में दिखता है, इसी कारण यह दर्शनाग्नि कहलाता है जो कि बीज, विराट् आदि चार आकृतिवाला आह्वनीय होकर (होम का आधार स्थल बनकर) मुख में रहता है । स्थूल शरीर का दाह करने वाली शरीर अग्नि (हिरण्यगर्भ) स्थूल शरीराश्रित जरादि (वृद्धावस्था) द्वारा क्षीण किया जाता है । स्थूल प्रपंच रूप हवि को ग्रसीत करता है जो कि अर्धचन्द्र की आकृतिवाला दक्षिणाग्नि होकर सब प्राणियों के हृदय में स्थिर रहता है । ‘इस रूप में सिद्ध ‘कोष्ठाग्नि’ है जो कि खाई पी हुई चाटी तथा आस्वादित वस्तु को भली-भाँति पकाकर गार्हपत्य रूप में नाभि स्थल में रहता है । प्रायः चितोपाधिस्वरूपविराट् आदि के नीचे प्रतिष्ठित वक्रतीन (परामवृत्तियाँ) जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन तीन अवस्था के प्रकाशक हिमांशु अर्थात् चिद्रूप चन्द्र सभी प्रकार प्रभु है (समर्थ) है, सब कुछ प्रकाशित कर देने वाला है ।

इस शरीर यज्ञ का, जो कि खम्भे तथा रसनाहीन है, कौन यजमान है ? तथा पत्नी ऋत्विज, सदस्य कौन है ? यज्ञ पात्र हवि वेद अन्तर्वेदिका (छोटी) द्रोण, कलश, रथ पशु (बलिपशु), अध्वर्यु, होता ब्राह्मणाच्छसी, प्रतिस्थाता, प्रस्तोता, मैत्रावर्षण, उद्गाता, धारा, पवन करने वाला, दर्भ (कुश), सुवा, आज्यस्थली (धृतपात्र) आधार, आज्यभाग, प्रयाज, अनुयाज, इडा, सुक्तवाक्, शयोवाक्, पत्नीसयाज, यूप (खम्भा), रशना दृष्ट दक्षिणा एवं यज्ञ के अन्त में किये जाने वाला अवभूथ (एक स्नान विशेष) कौन-कौन है ? अर्थात् जैसे यज्ञ में उपर्युक्त सभी वस्तुयें अपेक्षित हैं वैसे ही इस शरीर यज्ञ के लिए भी ये अवश्य अपेक्षित हैं, फिर ये कहाँ हैं तथा कौन है ?

अस्यशारीरयस्यूपरशनाऽशोभित्स्यात्मायजमानः बुद्धिपत्नीवेदामऋत्विजः अहंकारोऽध्वर्युः चित्त होता प्राणो ब्रह्मणाच्छसी अपानः प्रतिप्रस्थाता व्यानः प्रस्तोता उदान उद्गाता समानो मैत्रा वरुणः शरीर वेदिः नाभिकाऽन्तर्वेदिः मूर्धा द्रोणकलशः

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

पादा रथः दक्षिणहस्त सुवः सव्य आज्यस्था श्रीत्रे अधारौ चक्षुषी आज्यभागौ ग्रीवा  
धारा पीता तन्मात्राणि सदस्या महाभूजानि प्रयाजा गुणा अनुयाजः जिहबोडा दन्तोष्टौ  
सुक्तावाचः तालुः शंयोर्वाकः स्मृतिदया क्षान्तिरहिसा पत्नीसंयाजा ओंकारो यूपः  
काशा रशना मनोरथः कामः पशुकेशा दर्भाः इन्द्रियाणियज्ञ—पात्राणिकर्मेन्द्रियाणि  
हवाषि अहिंसा इष्टयः त्यागो दक्षिणा अपभृथमरणात् सर्वाण्यस्मिन् देवता  
शरीरे ऋथिममाहितः ।

इस शरीर यज्ञ का आत्मा यजमान है, बुद्धि पत्नी है वेद ही महा ऋत्विज है, अंहकार तत्व ही अध्वर्यु है, चित्त ही होता है प्राण ब्राह्मणच्छसी है, अपान प्रति-प्रस्थाता है, व्यान प्रस्तोता, उदान उद्गाता, समान मैत्रवरुण, शरीर वेदि, नाक, अन्त, वेदि, शिर, द्रोण, कलश, पैर, रथ, दाहिना हाथ, सुवा, बाँया हाथ घृतपात्र, कान आधार प्राणियाँ प्रोक्षणीपात्र, आँख आज्यभाग, गर्दन धारा, तन्मात्राये (पाँच) पोता, पंच माहाभूत सदस्य, गुज्ज प्रयाज अनुयाज, जीभ इडा, ओष्ठ सुक्तवाक्, तालु शयोवकि, स्मृति, दया, शान्ति अहिंसा, पत्नी संयाज ऊँकार खम्भा, आशा रशना, मन रथ, काम ही पशु, काल ही कुशायें इन्द्रियाँ यज्ञपत्र कर्मेन्द्रियाँ हवि, अहिंसा इष्टकायें, त्याग ही दक्षिण मृत्तु ही अवभृष्ट स्नान है । अर्थात् उपर्युक्त वस्तुओं में तत्तत् वस्तु की स्थिति समझ उन्हीं के अनुसार क्रियायें भी समझनी चाहिए । तभी यह यज्ञ पूरा फलदायक होता है (मोक्ष की प्राप्ति का साधन होता है) तथा सभी देवता इस शरीर में समाहित होते हैं ।

वाराणस्यां मृतो वाऽपि इदं वा ब्राह्मणः पठेत् ।

एकेन जन्मना जन्तुमौक्षं च प्राम्नुयादित्युपनिषद् ॥

यदि किसी का शरीर काशी में छूटे अथवा कोई ब्राह्मण इसे पढ़े तो एक ही जन्म चित्त शुद्धि करने वाले ज्ञान तथा मोक्ष को प्राप्त कर ले ।

(‘108 उपनिषद्’ पेज नं. 225 से 232)

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

## प्राणी हिंसा से संकृट निवारण नहीं

(पु. जातक III पृ. सं. 214)

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व काशी (-जनपद) के किसी गाँव में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर काम-भोगों को छोड़ ऋषियों की प्रवज्ञा ग्रहण की । ध्यान तथा अभिज्ञा उत्पन्न कर ध्यान में ही रत रह हिमालय में रमणीय बनखण्ड में रहते थे ।

उस समय वाराणसी राजा ने चारों नारकियों की (एक केवल ‘दु’ बोला, दूसरा ‘स’ बोला, तीसरा केवल ‘न’ बोला और चौथा केवल ‘सो’) ये चारों अवाजें सुन उसी प्रकार ब्राह्मणों से पूछा । उन्होंने तीन खतरों में एक खतरे की बात कह सर्वचतुष्क यज्ञ द्वारा उसे शान्त करने की बात कहा । उनके ऐसा कहने पर (राजा ने यज्ञ कराना) स्वीकार किया । पुरोहित ने ब्राह्मणों के साथ यज्ञ-कुण्ड बनवाया । अनेक प्राणी खम्भे के पास लाये गये ।

उस समय बोधिसत्त्व ने मैत्री-भावना युक्त चारिका करते हुए दिव्य चक्षु से लोक को देखा । जब उन्हें वह दिखाई दिया तो उन्होंने सोचा कि मुझे जाना चाहिये, अनेक जनों का कल्याण होगा । वह ऋद्धि-बल से आकाश में उठ, वाराणसी - राजा के उद्यान में उत्तर मंगल शिलापट पर सुवर्ण प्रतिमा की तरह बैठे ।

तब पुरोहित के ज्येष्ठ शिष्य ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया, “आचार्य ! क्या हमारे वेदों में पराए को मार कर कल्याण करना असम्भव नहीं बताया है ?” पुरोहित ने मना किया – “तू राजधन चाहता है, चुप रह । हम बहुत मत्स्य माँस खाएंगे और धन पाएंगे ।” “मैं इसमें सहायक नहीं होऊँगा कह निकल कर, वह राज उद्यान में पहुंचा । वहाँ बोधिसत्त्व को देख, प्रणाम कर कुशलक्षेम पूछ एक ओर बैठा ।

बोधिसत्त्व ने पूछा – “माणवक ! क्या राजा धर्मानुसार राज्य करता है ?”

“भन्ते ! राजा धर्मानुसार राज्य करता है । किन्तु, राजा को रात में चार आवाजें सुनाई दी । उसने ब्राह्मणों से पूछा ! ब्राह्मणों ने कहा – सर्वचतुष्क यज्ञ करके कल्याण करेंगे । राजा पशुधात कर अपना कल्याण करना चाहता है । अनेक जन (यज्ञ) स्तम्भ के पास ले जाये गये हैं । क्या भन्ते ! आप जैसे

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

सदाचारियों के लिये वह उचित नहीं हैं कि उन आवा जों की उत्पत्ति बताकर अनेक जनों को मृत्यु के मुख से बचायें ? ”

“माणवक ! राजा हमें नहीं जानता, हम भी उसे नहीं जानते । लेकिन हम इन आवाजों की उत्पत्ति जानते हैं । यदि राजा हमारे पास आकर पूछे तो हम कह कर उसका शक मिटा देंगे ।”

“तो भन्ते ! मुहूर्त भर यहाँ रहें । मैं राजा को लाऊंगा ।”

“माणवक ! अच्छा ।”

उसने जाकर राजा को यह बात कहीं और राजा को ले गया ।

राजा ने बोधिसत्त्व को प्रमाण कर एक ओर बैठा और पूछा : “क्या आप सचमुच मेरे सुने शब्दों का कारण जानते हैं ? ”

‘महाराज ! हाँ ।’

“भन्ते ! कहें ।”

“महाराज ! ये पूर्व जन्म में दूसरों की स्त्रियों से व्यभिचार करने वाले रहे हैं, और वाराणसी के आस-पास चार लोह-कुम्भी नरकों में पैदा हुए । उबलते हुए, लहकते पिघले लौहे में बुलबुले उठाते हुए पकते रहे । तीस हजार वर्ष तक नीचे रह, कुम्भी-तल से टकरा, ऊपर उठ तीस हजार वर्ष बाद कुम्भी-मुख देखा । चारों जाने चार गाथायें पूरी कर कहना चाहते थे । वैसा न कर सके । एक-एक अक्षर ही कह कर फिर लोह-कुम्भी में डूब गये । उनमें से ‘दु’ कह कर डूब जाने वाला प्राणी यह कहना चाहता था –

दुज्जीवितं अजीविम्ह ये सन्ते न ददम्हसे ।

विज्जमाने सु भोगे सु दीपं नाकम्ह अन्तनो ॥

(पास होने पर भी जो नहीं दिया यह जीवन भी खराब जीवन ही रहा । भोगों के होने पर भी अपने लिये द्वीप नहीं बनाया ।) ‘लेकिन, सका नहीं’ कह बोधिसत्त्व ने अपने ज्ञान से ही वह गाथा पूरी थी । शेष गाथाओं में भी इसी प्रकार । उनमें ‘स’ कहकर जो बोलना चाहता था उसकी यह गाथा है –

सट्टवस्सहस्सानि परि पुण्णानि सव्वसो ।

निरये पच्च मानानं कदा अन्तो भविस्सति ॥

(हर प्रकार से पूरे साठ हजार वर्ष तक नरक में जलते रहने का कब अन्त होगा ? )

\*\*\*\*\* 101 \*\*\*\*\*

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

‘न कह कर बोलने की इच्छा रखने वाली की यह गाथा :-  
नन्ति अन्तो कुतो अन्तो न अन्तो पटिदिस्सति ।

तदाहि पक्तं पापं मयं तुह्यं च मारिस ॥  
(अन्त नहीं है । अन्त कहाँ से होगा ! अन्त दिखाई नहीं देता ! मित्र उस समय मेरा और तुम्हारा पाप विशेष रहा है) ‘स’ कहकर बोलने की इच्छा रखने वाले की गाथा :-

सोहं नून इतो गन्तवा योनि लद्रान मानुसि ।  
क दञ्जू सीतसम्पन्नो काहामि कुसलं बहै ।

(अब मैं निश्चय से यहाँ से जाकर मनुष्य देह प्राप्त करने पर दयालु तथा सदाचारी हो बहुत कुशल-कर्म करूँगा ।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने एक-एक गाथा कह राजा को समझाया – महाराज ! वह नारकीय प्राणी यह गाथा पूरी करके कहना चाहता था । लेकिन अपने पाप की महानता के कारण वैसा न कर सका । वह अपने कर्म फल को भोगता हुआ चिल्लाया । आपको इस आवाज के सुनने के कारण कोई खतरा नहीं है । आप न डरें ।

राजा ने सब प्राणियों को मुक्त करा, सोने का ढोल पिटवा, यज्ञ-कुण्ड नष्ट करा दिया । बोधिसत्त्व प्राणियों का कल्याण कर, कुछ दिन रह, वहीं जा, ध्वनावस्थित हो, ब्रह्मलोक में पैदा हुये ।

## “पापियों की बलि की घोषणा से पाप बन्द”

पूर्व समय में वाराणसी में (राजा) ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय, बोधिसत्त्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में जन्म ग्रहण किया । माता की कोख से निकलने पर, नाम ग्रहण के दिन (उसका) नाम ब्रह्मदत्त कुमार रक्खा गया । जब वह (कुमार) सोलह वर्ष का हो गया, तो तक्षशिला जा विद्या सीख कर, तीनों वेदों तथा अट्ठारह विद्याओं (1) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) 2. स्मृति 3. व्याकरण 4. छन्दोविचिति 5. निरुक्त 6. ज्योतिष 7. शिक्षा 8. मोक्ष-

\*\*\*\*\* 102 \*\*\*\*\*

## \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

ज्ञान 9. क्रियाविधि 10. धनुर्वेद, 11. हस्तिशिक्षा, 12. कामतन्त्र, 13. लक्षण, 14. पुराण, 15. इतिहास, 16. नीति, 17. तर्क तथा 18. वैधक) में पूर्णता प्राप्त की। तब उसके पिता ने उसे उप-राज (युवराज) बना दिया।

उस समय वाराणसी-निवासी देवताओं के भक्त थे। (वे) देवताओं के नमस्कार करते थे और बहुत सी भेड़, बकरी, मुर्ग, सुअर आदि को मार, नाना प्रकार के पुष्पगन्धों तथा रक्त-मांस के साथ बलिकर्म करते थे। बोधिसत्त्व ने सोचा - “इस समय लोग देवताओं की भक्ति में बहुत प्राण-वध करते हैं। साधारण लोग अधिकाँश तौर पर अर्धम में ही नियुक्त हैं। मैं पिता के मरने पर, राज्य प्राप्त कर किसी को भी बिना कष्ट दिए, ढंग (उपाय) से ही किसी को प्राण-वध न करने दूँगा।” उसने एक दिन रथ पर चढ़ नगर से निकल कर देखा कि एक बड़े भारी बरगद के वृक्ष के नीचे बहुत से लोग एकत्रित हुए हैं, और उस वृक्ष में रहने वाले देवता से पुत्र, पुत्री, यश, धन आदि जो-जो चाहते हैं, सो-सो मांगते हैं। वह रथ से उतर कर वृक्ष के पास गया। गन्धपूष्प से उसकी पूजा की। जल से उसका अभिषेक किया और उसकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार उस देवता का भक्त बन, उसे नमस्कार किया। (फिर) रथ पर चढ़ नगर में प्रविष्ट हुआ।

उस समय में, इसी प्रकार, बीच-बीच में वहाँ जाकर देवता के भक्त की तरह पूजा करता। कुछ समय के बाद पिता की मृत्यु होने पर उसने राज्य पद पर प्रतिष्ठित हो, चार अगतियों से बच, दस राज-धर्मों के विरुद्ध न जा, धर्मपूर्वक राज्य करते हुए सोचा - “मेरी इच्छा पूरी हुई। मैं राज्य पर प्रतिष्ठित हुआ। अब मैंने, जो पहले एक बात सोची थी, उसे पूरा करूँगा।” (यह सोच) आमत्यों तथा ब्राह्मण गृहपति आदि को एकत्रित करवा, (उन्हें) सम्बोधित किया - “भो ! क्या आप जानते हैं कि मुझे राज्य क्यों मिला ?”

“देव ! नहीं जानते हैं।”

“उस समय मैंने मिन्नत मानी थी कि यदि मुझे राज्य मिलेगा तो मैं तुम्हारे (निमित्त) बलि-कर्म करूँगा। मुझे यह राज्य इन्हाँ देवता के प्रताप से मिला है। सो-मैं अब इनका बलि-कर्म करूँगा। तुम देर न करो, शीघ्र ही देवता के बलि-कर्म की तैयारी करों।”

“देव ! क्या क्या (चीजें) ले ?”

## \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

“मैंने देवता की प्रार्थना करते हुए, यह मिन्नत मानी थी कि जो मेरे राज्य में हिंसा (प्राण-घात) आदि पाँच दुःशील कर्म तथा दस अकुशल कर्म करने में लगे रहते हैं उन्हें मारकर, उनकी आंत की बत्ति, रक्त माँस आदि से बलि-कर्म करूँगा। सो तुम यह मुनादि करवा दो हमारे राजा ने उपराज रहते ही यह मिन्नत मानी थी, कि यदि मुझे राज्य मिलेगा, तो जो मेरे राज्य में दुःशील होंगे, उन सबको मार बलि करूँगा। सो, नगरवासी जान लें कि अब वह पाँच प्रकार तथा दस प्रकार के दुःशील कर्म करने वाले, एक हजार जनों को मरवाकर उनके हृदय माँस आदि लिवा कर, उससे देवता का बलि-कर्म करने का इच्छुक हैं। (यह कहकर) जो अब से लगा कर दुःशील कर्मों से अनुरक्त रहेंगे, उनके एक सहस्र जने मार कर, यज्ञ करके मिन्नत से मुक्त होऊँगा।

अमात्यों ने बोधिसत्त्व का वचन सुन, “देव ! अच्छा”, कह, बारह योजन के वाराणसी नगर में मुनादी फिरवा दी। मुनादी की आज्ञा सुनकर, एक भी दुःशील कर्म करने वाला आदमी न रहा। सो जब तक बोधिसत्त्व राज्य करते रहें, तब तक एक आदमी भी पाँच या दस प्रकार के कुकर्मों में से किसी एक कर्म को भी करता न दिखाई दिया। इस प्रकार बोधिसत्त्व किसी एक भी आदमी को कष्ट न दे, सकल राष्ट्रवासियों से सदाचार की रक्षा करवाते हुए, अपने आप भी दान आदि पुण्य करते हुए जीवन के अन्त में अपनी परिषद् को ले देव-नगर की पूर्ति करते हुए (परलोक को) गये।

(जातक - I) (पृ. 343)

## हिंसा की प्रतिक्रिया है प्राकृतिक प्रकोप

(हिंसा का वैज्ञानिक शोध-बोध)

प्राचीन आध्यात्मिक अहिंसा विज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक शोधोंने भी सिद्ध कर दिया है कि स्व-पर, राष्ट्र, विश्व में सुख, शांति, विकासादिके लिए अहिंसा ही अनिवार्य सिद्धान्त है तो दुःख, अशान्ति, विनाश के लिए हिंसा ही मूलभूत कारण है। स्व-पर को हिंसन/ हनन/ विध्वंस/ क्षति पहुँचाने वाले समस्त कारण/ कारक हिंसा है भले वह हत्या, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पक्षपात, संकीर्णता, द्वेष, ईर्ष्या, लालसा, असदाचार,

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

भ्रष्टाचार, घूसखोरी, मिलावट, अनैतिकता से लेकर स्व-पर को शारीरिक, मानसिक, वाचनिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, कानूनी रूप में हानि पहुँचाना/ वाधित करना/ विस्फुल करना आदि क्यों न हो ? भाव में जो दूषित परिणाम होता है वह भावहिंसा है और उस परिणाम से जो क्षति पहुँचती है वह द्रव्यहिंसा है। दूषित परिणामों के कारण जो भावात्मक कंपन/ तरंगे निकलती हैं उससे स्व के साथ—2 दूसरे भी दूषित रूप में प्रभावित होते हैं। और सूक्ष्म अनंतानंत कर्म परमाणु आकर्षित होकर उस जीव के आत्म प्रदेशों में जैविक-रासायनिक प्रक्रिया से बँध जाते हैं। यही कर्म परमाणु आगे जाकर समय प्राप्त करके उस जीव को विभिन्न प्रकार के कष्ट देते हैं। अन्य जीव को जब कष्ट दिया जाता है और उससे जो पीड़ात्मक कम्पन/ तरंगे निकलती हैं वे तरंगें विपरीत प्रभाव प्रकृति एवं दूसरों पर डालती हैं। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि राजा वसु ने जब आकाश स्फटिक मणि निर्मित सिंहासन पर बैठकर यह मिथ्या कथन किया कि यज्ञ में अज अर्थात् बकरा की बलि चढ़ानी चाहिए तब वह सिंहासन फट गया और दूसरी बार वही हिंसात्मक मिथ्या वचन बोलने के कारण पृथ्वी भी फट गयी और पृथ्वी में वह राजा भी धूँस गया और मर करके नरक गया। इससे यह सिद्ध होता है कि उस हिंसात्मक पाप के विचार से एवं कथन से जो तीव्र दूषित तरंगें निकलीं वे तरंगें इतनी तीव्र थीं कि विशाल स्फटिक मणि के सिंहासन को तोड़ डाला एवं धरती को भी फाड़ डाला। इस सिद्धान्त को ही आगे हमारे भारतीय वैज्ञानिकोंने Bisology रूप में सिद्ध किया है। जिसका वर्णन विस्तार से आगे किया है।

शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि दिग्म्बर जैन मुनि संघ एक नगर से होकर विहार कर रहा था और वहाँ के 60 हजार व्यक्तियों ने साधुओं की हँसी उड़ायी, और कुछ ने अनुमोदना की, और एक व्यक्ति ने ऐसा करने के लिए मना किया तथा उसने साधुओं की प्रशंसा की। आगे जाकर उस नगर में आग लग गई और पूरा नगर विध्वंश हो गया और 60 हजार व्यक्ति भी जलकर भस्म हो गये परन्तु वह व्यक्ति बच जाता है जिसने दुर्व्यवहार करने के लिए मना किया था, इससे विज्ञान के क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त और Bisload सिद्धान्त को समर्थन मिलता है। निम्न में कुछ प्राचीन एवं आधुनिक धार्मिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा उपर्युक्त विषयों का स्पष्टीरण कर रहा हूँ।

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

## धार्मिक दृष्टि से पुण्य-पाप का फल

दुरादभीष्टममिगच्छति पुण्ययोगात्  
पुण्याद्विना करततस्यमपि प्रयाति।  
अन्यत्पर प्रभवतीह निमित्तमात्रम्  
पात्रं वुद्धाः भवतः निर्मल पुण्यराशेः ॥ 32 ॥

पुण्य के भोग से अभीष्ट वस्तु दूर स्थान से भी आ जाती है – मिल जाती है और पुण्य के बिना हस्त तल पर स्थित भी चली जाती है। इष्ट वस्तु की प्राप्ति – अप्राप्ति के विषय में अन्य तो निमित्त मात्र हैं, इसलिए विद्वतज्ञों ने निर्मल पुण्य राशि के पात्र हो ओ।

पुण्याज्जलायते वहिनविषमध्यमृतायते ।  
मित्रायन्तके द्विषःपुण्यात्पुण्याच्छामन्ति भीतय ॥ 33 ॥

पुण्य से अग्नि जल के समान हो जाती है, विष भी अमृत के समान आचरण करने लगता है, पुण्य से शत्रु मित्र के समान हो जाते हैं और पुण्य से भय शान्त हो जाते हैं।

वान्धवमह मेऽपि जनो दूःखानि पाप पाकेन  
पुण्येन वैरिसदनं मातोऽपि न मुच्यते सौख्ये ॥ 34 ॥

पाप के उदय से मनुष्य बन्धुजनों के बीच में भी दुःखों को प्राप्त होता है और पुण्य से शत्रु के घर गया हुआ भी सुखों से मुक्त नहीं होता – सुख प्राप्त करता है।

शुभे स्वस्यानुकूलानि चेतना चेतनानि ते ।  
प्रतिकूलानि तान्येव जीवस्याशुभ कर्मणि ॥ 42 ॥

पुण्योदय में चेतन – अचेतन सभी पदार्थ अपने अनुकूल होते हैं और पाप कर्म के उदय में वे ही पदार्थ प्रतिकूल हो जाते हैं।

दुरस्यं सुलभं रत्नं पुंसां भाग्ये पचेतिमे ।  
हस्तागतं विपुण्यानामपि दूरे ब्रजेत्पुनः ॥ 4 4 ॥

भाग्य के अनुकूल होने पर दूरवर्ती रत्न भी सुलभ होता है और पुण्य मनुष्यों का हस्तागत रत्न भी दूर चला जाता है।

औषधानि च मित्राणि नक्षत्राणि शकु नग्रहाः ।  
भाग्यकाले प्रसन्नाः स्युभाग्ये निष्फलाश्च ते ॥ 46 ॥

औषध, मित्र, नक्षत्र, शकुन और ग्रह भाग्योदय के समय प्रसन्न रहते हैं और अभाग्योदय के समय वे सब निष्फल होते हैं। अर्थात् पुण्योदय से शुक्ल औषधादि अनुकूल होते हैं, परंतु वे ही पापोदय में प्रतिकूल हो जाते हैं। अतः सुख के लिए प्रमुख कारण पुण्य है और दुःख का कारण पाप है। शुभ या अशुभ शकुनादि बाह्य निमित्त है।

अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसा शुभाशुभम् ।  
यत्तस्यशकुनः पांकं निवेदयति गच्छताम् ॥५॥

मनुष्यों के पूर्व जन्मार्जित जो शुभाशुभ कर्म है, उन कर्मों के शुभाशुभ फल का गमनकालीन शकुन प्रकाशित करता है।

जिन कारणों से मनुष्य भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल की घटनाओं एवं पदार्थों को जानने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, उन सभी कारणों को निमित्त कहते हैं।

(9) भौम – भूमि से सम्बन्धित लक्षणों का प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रों को भौम कहते हैं। भूमि में हलचल का होना, सशब्द भूकम्प का होना, यह भूमि उर्वरा है या उसर ? यह भूमि किस बीज को उत्पन्न कर सकती है ? इस भूगर्भ में कौन सी धातु है ? कितनी दूर है ? जल है, गैस है, या तेल है ? अथवा यूरेनियम की तरह का कौन सा बहुमूल्य तत्व है ? इत्यादि पदार्थों को जानने के लक्षणों और शुभ-अशुभफल का ज्ञान करनेवाले शास्त्रों को भौममहानिमित्त कहते हैं, जैसा कि –

शब्देन महत्ता भूमिर्यदा रसति कम्पते ।  
सेनापतिरमात्रयश्च राजा राज्यं च पीडयेत ।

अर्थात् महान् शब्द करती हुई जब भूमि कांपती है, तब सेनापति, मंत्री राजा प्रजा पीड़ा को प्राप्त होते हैं।

(2) औत्पात – इसका अर्थ है – उपद्रव, आकस्मिक दुःखदायी घटना हलचल, दंगा-फसाद इत्यादि। यह मुख्यतः तीन प्रकार का होता है – दैविक

भौतिक और आध्यात्मिक जिन लक्षणों से भावी उत्पादों को जाना जाए उन लक्षणों का ज्ञान कराने वाले शास्त्र की औत्पात महानिमित्त कहते हैं।

(3) स्वप्न – सोते समय गाढ़ी नींद न आने के कारण कुछ घटनायें दिखाई देती हैं, जिन्हें स्वप्न कहा जाता है।

## विभिन्न विपत्ति के कारण

ये पुरा मनुजा नित्यमुत्कोचनपरायणाः ।  
भीषयन्ति परान् नित्यं विकुर्वन्ति तथैव च ॥  
ऋणवृद्धिकराश्चैव दरिद्रभ्यो यथेष्टतः ।  
येश्वाभिः क्रीडमानश्च त्रासयन्ति वने मृगान् ॥  
प्राणहिं सा तथा देवि कुर्वन्ति च यतस्तः ।  
येषां गृहेषु वैश्वानः त्रासयन्ति वृथा नरान् ॥  
एवयुक्तं समाचाराः कालधर्मगताः पुनः ।  
पीडिता यमदण्डेन निरयस्थाश्चिरं प्रिये ॥  
कथंचित् प्राप्य मानुष्यं तत्र ते दुःख संयुताः ॥  
कुदेशो दुःखभूयिष्ठे व्याघ्रातशत संकुते ॥  
जायन्ते तत्र शोचन्तः सोद्देगाश्च यत्सततः ॥

(महाभारत अनु.पर्व)

श्री महेश्वर ने कहा – देवि ! जो मनुष्य पहले प्रतिदिन धूस लेते हैं, उसरों को डराते हैं, और उनके मन में विकार उत्पन्न कर देते हैं, अपनी इच्छानुसार दरिद्रों का ऋण बढ़ाते हैं, जो कुत्तों से खेलते हैं और वन में मृगों को त्रास पहुँचाते हैं, जहाँ वहाँ प्राणियों की हिंसा करते हैं, जिनके घरों में पले हुए कुत्ते व्यर्थ ही लोगों को डराते रहते हैं, प्रिये ! ऐसे आचरण वाले मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होकर यमदण्ड से पीड़ित हो, चिरकाल तक नरक में पड़े रहते हैं। फिर किसी प्रकार मनुष्य का जन्म पाकर अधिक दुःख से भरे हुए सैंकड़ों बाधाओं से व्याप्त कुत्सित रहते हैं।

### सन्तान रहित होने का कारण -

ये पुरा मनुजा देवि सर्वप्राणिषु निर्दयाः ।  
हनन्ति वालांश्च भुञ्जन्ते मृगाणां पक्षिणामपि ॥  
गुरुविद्वेषिणश्चैव परपुत्राभ्य सूयकाः, ।  
पितृपूजां न कुर्वन्ति यथोक्तां चाष्टकादिभिः ॥  
एवं युक्तं समाचाराः पुर्नजन्मनि शोभने ।  
मानुष्यं सुचिरात् प्राप्य निरपत्या भवन्ति ते ।  
पुत्रशोकयुक्ताश्चापि नास्ति तत्र विचारणा ॥

श्री महेश्वर ने कहा – देवि ! जो मनुष्य पहले समस्त प्राणियों के प्रति निर्दयता का बर्ताव करते हैं, मृगों और पक्षियों के बच्चों को भी मारकर खा जाते हैं, गुरुसे द्वेष रखते हैं, दूसरों के पुत्रों के दोष देखते हैं, पार्वण आदि श्राद्धों के द्वारा शास्त्रोक्त रीति से पितरों की पूजा नहीं करते हैं, शोभने ! ऐसे आचरण वाले जीव फिर जन्म लेने पर दीर्घकाल के पश्चात् मानव योनि को पाकर सन्तानहीन तथा पुत्रशोक से संतप्त होते हैं । इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।  
(महाभारत अनुशासनपर्व दान धर्मपर्व)

### इष्टवियोग होने का कर्म -

पशूनां वा मनुष्याणां वियोगं ये वित्तन्वते ।  
वन्धवादैः पराराभीश्रीवत्स्वादीश्च हरन्त्यलम् ॥ (155)  
निःशीलास्ते लभन्ते ऽत्र वियोगं च पदे पदे ।  
पुत्र वान्धव कान्ताश्रूयादीष्टे भ्यो ह्यशुभोदयात् ॥ (156)

वीर वर्धमान चरिते सप्तदश अधिकार ।

जो जीव पशुओं का अथवा मनुष्यों का उनके बन्धुजनों से वियोग करते हैं, परस्त्री, परलक्ष्मी, परवस्तु आदि का निरन्तर अपहरण करते हैं तथा ब्रत शील आदि से रहित हैं, वे जीव यहाँ पद-पद पर पापकर्म के उदय से पुत्र वान्धव, स्त्री और लक्ष्मी आदि इष्ट वस्तुओं से वियोग को प्राप्त होते हैं ।

### पापी होने का कर्म -

ये जर्यन्ति सदा पापं हिंसानृतादिभिः खलाः ।  
दुर्बुद्ध्याविषयासंक्त्यामिथ्यादेवादिभिकृतभिः ॥ (145)

शवभ्रादौ तत्कलेनात्र चिरं भुडकत्वाऽसुखं महत् ।  
जायन्ते पापिनः पापात्तेऽहो तदगति हेतवे ॥ (146)

(श्री वर्धमाने चारित्रे सप्तदशोऽधिकारः)

जो दुष्ट मनुष्य हिंसा, झूठ आदि के द्वारा दुर्बुद्धि से विषयों में, आसक्ति से कुदेवादि की भक्ति से सदा पापों का उपार्जन करते हैं, वे जीव इस लोक में ही चिरकाल तक दुःख भोगकर उस पापकर्म के फल से नरकादि गतियों में उत्पन्न होते हैं । अहो गौतम ! वे जीव दुर्गति को जाने के लिए पाप से पापी ही उत्पन्न होते हैं ।

### विकलाङ्ग बनने का कर्म :

स्वेच्छया ये प्रवर्तन्ते हिंसादि पापपञ्चसु ।  
उन्मत्ता इव गृहन्ति तत्वार्थान् श्री जिनोदितान् ॥ (111)

देवश्रुतगुरुन् धर्मार्चादीन् सत्यांस्तथेतरान् ।  
भवन्ति विकलास्ते मतिज्ञानावरणोदयात् ॥ (112)

(व.मा.चा.)

जो जीव हिंसादि पापों में अपनी इच्छा से प्रवृत्त होते हैं, श्रीजिनेन्द्रदेव से उपविष्ट तत्वार्थ को उन्मत्तपुरुष के समान यद्वा-तद्वा रूप से ग्रहण करते हैं तथा सत्य और असत्य, देव, शास्त्र, गुरु, धर्मप्रतिमा आदि को भी समान मानते हैं ऐसे जीव मतिज्ञानावरण कर्म के उदय से विकलाङ्गी होते हैं ।

ये पुरा मनुजा देवि लोभ समावन्ताः ।  
प्राणिनां प्राणिहिं सार्थभिङ्गिविधनं प्रकुर्वते ॥  
शस्त्रेणोक्त्व्य वा देवि प्राणिनां चेष्टनाशकाः ।  
एवं युक्तसमाचाराः पुर्नजन्मनि शोभने ॥  
तदद्वृहीनां वै प्रेत्य भवन्तयेव न संशयः ।  
स्वभावतो वा जाता वा पञ्चवस्ते भवन्ति वै ॥

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

श्री विश्वेश्वर ने कहा - देवि ! जो मनुष्य पहले लोभ और मोह से आच्छादित होकर प्राणियों के प्राणों की हिंसा करने के लिए अंगभंग कर देते हैं, शस्त्रों से काटकर उन प्राणियों को निश्चेष्ट बना देते हैं, शोभने ! ऐसे आचार वाले पुरुष मरने के बाद पुर्णजन्म लेने पर अंगहीन होते हैं, इसमें संशय नहीं है। वे स्वभावतः पंगुरूप में उत्पन्न होते हैं। अथवा जन्म लेने के बाद पंगु हो जाते हैं। (महाभारत अनुशासन पर्वदान धर्मपर्व)

### विभिन्न युग में कर्मानुसार सुख दुःख -

प्रागपि चाधर्माहते नाशुभोत्पत्तिरन्यतोऽभूत् । आदि काले ह्यातितिसुतमौजसोऽतिबल विपुलप्रभावोः प्रत्यक्ष देव-देवर्षि धर्मयज्ञविधिविधानाः शैलेन्द्रसारसंग्रहतस्थिरशरीराः प्रसन्न वर्णेन्द्रियाः पवनसमबलजमपराक्रमाचा रुस्फिचोऽभिरुप्रमाणाकृति - प्रसादोपचयवत्तः सत्यर्जवानृशंस्यदानदमनियमतपउपवासब्रह्मचर्य व्रत - परा व्यपगतभयरागद्वेषमोहलोभक्रोध शोक मान रोग निद्रातन्द्रा - श्रमक्लमालस्यपरिग्रहाश्च पुरुषा वभूकरभितायुषः तेषामुदारसत्त्व गुणकर्मणामचिन्त्यरसवी विपाकप्रभावगुणसमुदितानि प्रादुर्बभूवुः सत्यानि सर्वगुणसमुदितत्वात् पृथिव्यादीनां कृतयुगस्यादौ। भ्रश्यतितुकृतयुगे केषांचिदत्यादानात्सांपन्निकानां शरीर गौरवमासीत्, शरीर गौरवात् श्रमः श्रमादालस्यम्, आलस्यात् संचयः संचयात् परिग्रहः परग्रिहाल्लाभः प्रादुर्भुतः (27).

पुराकाल से भी अर्धमेर के बिना किसी अन्य कारण से अशुभ की उत्पत्ति नहीं हुई। अनादिकाल से देवों के सदृश ओजयुक्त, अतिबलशाली तथा अत्यधिक प्रभाव वाले, जिन्हें देव, देवर्षि, धर्म, यज्ञ, विधि तथा अनुष्ठान प्रत्यक्ष थे, हिमालय पर्वत के सदृश सार (त्वचा रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य, मन) युक्त सुगठित एवं स्थिर शरीरवाले, वर्ण तथा इन्द्रियाँ जिनकी प्रसन्न निर्मल थी, वायु के समान बल, वेग एवं पराक्रम वाले सुन्दर नितम्बों वाले, मनोहर प्रमाण (लम्बाई - चौड़ाई) आकृति प्रसार तथा उपचय (पुष्टि) वाले, सत्य, आर्जव (छल, कपट न होना, सरलता) आनृशंस्य (अंकुरता), दान, दम, नियम (शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानि - नियमः) तप, उपवास तथा ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करने वाले भय, राग, द्वेष, मोह, लोभ, क्रोध, शोक, अहंकार रोग, निद्रा (असमय में) तन्द्रा, श्रम (थकावट), काम (बिना

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

अभ्यास के ही थकावट की प्रतीति होना) आलस्य, परिग्रह (रिश्वत आदि लेना) इनसे रहित अत्यधिक दीर्घ आयु वाले पुरुष हो चुके हैं। सत्य युग के प्रारम्भ में सम्पूर्ण गुणों से युक्त शस्त्र (अनाज) उत्पन्न हुये थे। सत्य युग के कुछ काल के व्यतीत होने पर किन्हीं सम्पन्न पुरुषों के अत्याधिक धन आदि के लेने पर वा अधिक भोजन से उनके शरीर भारी हो गये, शरीर के भारी होने से थकावट, थकावट से आलस्य, आलस्य से संचय (जमा करने की इच्छा), संचय से परिग्रह - हर तरह से धन आदि का लेना वा ममता तथा परिग्रह से लोभ उत्पन्न हो गया।

ततस्त्रेतायांलोभाद्भिद्रोहः अभिद्रोहदनृतवचनम्, अनृतवचनात्कामक्रोधमान द्वेषपारुष्याभिद्यात् भयतापशोकवित्तोद्वेगादयः प्रवृत्ताः ततस्त्रेतायां पर्मपादोऽन्तर्धानमगमत् तस्यान्तर्धानात् युगवर्षप्रमाणस्यपादह्नासः) पृथिव्यादीनां गुणपादप्रणाशो - ५ भूत, तत्प्रणाशकृतश्च सस्यानां स्नेहवैमहलर सवीर्यविपाकप्रभावागुणवाप्रभंशः, ततस्तानि प्रजाशरीराणि हीन गुणपादश्चाहारविहारैयथा पूर्वमुपष्ट भ्यमानान्यम्निमारु तपरीतानि प्राग्व्याधिभिर्ज्वरादि भिरा क्रान्तानि, अतः प्राणिनोनद्वासमवापुरायुषः क्रमशः इति ॥ 28 ॥

तदन्तर त्रेता में लोभसे अभिद्रोह (हिंसा व दूसरे को हानि पहुँचाना) अभिद्रोह से झूठ बोलना, झूठ बोलने से काम, क्रोध, अहंकार, द्वेष, कठोरता - अभिद्यात (चोट), भय, पाप, शोक तथा पित्त की ग्लानि आदि प्रवृत्त हुये। इस कारण त्रेता में धर्म का एक पाद (पैर - चतुर्थांश) लुप्त हो गया। इसके लुप्त होने से युग (सत्ययुग) के वर्षों के प्रमाण का चतुर्थांश कम हो गया अर्थात् सत्ययुग का प्रमाण 4800 दिव्य वर्ष है। इसका चतुर्थांश 1200 दिव्य वर्ष त्रेता में कम हो गये। अभिप्रायः यह है कि त्रेता का प्रमाण 4800-1200 = 3600 दिव्य वर्ष हुआ। इसी प्रकार सत्ययुग में व्यास के अनुसार पुरुषों ने औसतन आयु 400 वर्ष की होती थी - जैसे कहा भी है।

“पुरुषाः सर्वासिद्धास्य चतुर्वर्षशतयुषः ॥”

400 का  $1/4 = 100$  होता है। अतः त्रेता में पुरुष की आयु 400 - 100 = 300 हो गयी।

पृथिवी आदियों के भी गुणों का चतुर्थांश नष्ट हो गया। उनके नष्ट होने

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

से शस्त्रों (अनाज) के स्नेह, निर्मलता रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव तथा अन्य गुणों में चतुर्थांश की कमी हो गयी। तदन्तर उन प्राणियों के शरीर चतुर्थांश गुण जिनमें कम हो गया है, ऐसे आहार विहारों से जैसे उससे पूर्व (सत्ययुग में) परिपालित होते थे और अग्नि एवं वायु से युक्त थे उतने परिपालित न होने के कारण तथा उतने अग्नि एवं वायु से युक्त न होने के कारण पहले ज्वर आदि रोगों से आक्रान्त हो गये अतएव प्राणियों की आयु क्रमशः कम हो गयी।

युगे-युगे धर्मपादः क्रमेणोनन् हीयते  
गुणपादश्च भूतानामेव लोक प्रलीयते ॥ 29 ॥

युग-युग में इस कर्म से धर्म का एक पैर (चतुर्थांश) कम होता है। साथ ही पञ्चमहाभूतों के गुणों का भी एक पाद नष्ट हो जाता है। इस प्रकार नष्ट होते-होते अन्त में, संसार का प्रलय हो जाता है। (चरक संहिसा 325)

### ‘राष्ट्र में संकट आने का कारण

वायादीनां यदृगुणं मुत्पदयते तस्य मूलमधर्मः तन्मूलं वाऽसत्कर्म पूर्वकृतं वयोर्योनिः प्रज्ञापराध एव। तद्यथायदा देशनगर निगमजनपदप्रधाना धर्ममुत्क्रम्याधर्मेण प्रजां वर्तयन्ति, तदाश्रितोपाश्रिताः पौरजानपदा व्यवहारोपजीविनश्य तमधर्ममभिवर्धयन्ति, ततः सोऽधर्मः प्रसभं धर्ममन्तर्धर्त्ते, ततस्तेऽन्तहितधर्माणो, देवताभिरपि त्यज्यन्ते, तेषां तथाऽन्तहितं धर्माणामधर्म प्रधानानामवक्रान्तदेवतानामृतवो व्यापद्यन्ते, तेन नापो यथाकालं देवो वर्षति न वा वर्षति विकृता वा वर्षति, वाता न सम्यग्भिवान्ति, क्षितिव्यापद्यते, सलिलान्युपष्यन्ति, ओषधयः स्वभावं परिघयापद्यन्ते विकृतिं, ततउद्धवंसन्ते, जनपदाः स्पर्शाभ्यवहार्यदोषात् ॥ 23 ॥ (चरकसंहिता अ. 3 पृ. 324)"

वायु आदि सबकी ही विगुणता की जड़ अर्थम है अथवा अर्थम का कारण जो पूर्वकृत बुरे कर्म हैं, उन्हें वायु आदि की विगुणता का कारण कह सकते हैं। पूर्वकृत बुरे कर्म तथा अर्थम दोनों का उत्पत्तिकरण प्रज्ञापराध है। जैसे जब देश नगर - निगम का जनपदों के मुखिया का राजा धर्म की परवाह न करते हुए अर्थम से प्रजा के साथ व्यवहार करते हैं, तब उनके आर्थित, उपार्जित,

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

पौरजनपद (नगर के लोग) और व्यवहारोपजीवी - व्यापार करने वाले उस अर्थम को बढ़ाते हैं अर्थात् जब मुखिया ही अधर्माचरण करता हो - रिश्वत आदि लेता हो तो उसके नौकर - चाकर देखादेखी व अपने मुखिया के पेट भरने के लिये दूसरों से रिश्वत लेना चाहते हैं या दूसरे अर्थम कार्य करवाना चाहते हैं अतः जो व्यापारी अपना लेन-देन उनके साथ करना चाहते हैं उन्हें वहाँ के नौकारों को रुपये चढ़ाने पड़ते हैं। इस कमी को पूरा करने के लिए व्यापारी दूसरी तरह धोखा करते हैं। इस प्रकार रिश्वत देना-लेना, घूस-खोरी, धोखा व असत्य का बाजार गरम हो जाता है। वह बढ़ता हुआ अर्थम, धर्म को सर्वदा छिपा देता है। जब धर्म लुप्त हो जाता है तब देवता भी उनका त्याग कर देते हैं। उन लुप्त धर्म अर्थमप्रधान देवताओं से त्यक्त देश, जनपद आदि की ऋतुयें विकृत हो जाती जिससे इन्द्र वा मेघ यथाकाल जल नहीं बरसाते अथवा सर्वथा नहीं बरसते अथवा विकृत जल बरसता है। वायु ठीक प्रकार से नहीं बहती, पृथ्वी विकृत हो जाती है, जल सूख जाता है, औषधियाँ स्वभाव को छोड़कर विकृत हो जाती हैं। तब उनके स्पर्श तथा आहार के दोष से जनपद उजड़ जाते हैं।

### “युद्ध होने का कर्म”

तथा शस्त्रप्रभवस्यापि जनपदोद्धवं सस्याधर्म एक हे तु र्भवति ये ऽतिमबुद्ध्लोभ - शेषमोहमानास्ते दुर्बलानवमत्यात्मस्वजनपरोपधातायशस्त्रेण परस्परमभिक्रान्त, परान्वाऽभिक्रामन्ति, परैर्वाऽभिक्राम्यन्ते । (24) ।

तथा शस्त्रों से उत्पन्न अर्थात् लड़ाईयों - युद्धों से उत्पन्न जनपदोद्धवं स का भी अर्थम ही कारण होता है जिनका लोभ, रोष, मोह, अहंकार अधिक बढ़ जाता है, वे दुर्बल पुरुषों की अवज्ञा करके अपने स्वजन (स्त्री, भूत्य आदि) वा दूसरों के नाश के लिये शस्त्र ढारा परस्पर लड़ते हैं। दूसरों पर चढ़ाई करते हैं, वा दूसरों से आक्रान्त किये जाते हैं अर्थात् परपुरुष वा परराष्ट्र आक्रमण कर देते हैं जैसे महाभारत का युद्ध वा विगत योरोपीय महायुद्ध । (24 ये.)

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

### “नरसंहार होने का कर्म”

रक्षोगणादिभिर्वा विवधैङ्गभूतसङ्ग स्तपमधर्ममन्यद्वाऽप्य ।

पचारान्तरमुपलभ्याभिहन्यन्ते ॥ 25 ॥

अधर्म का अन्य किसी उपचार (अस्वच्छता आदि) को पाकर मनुष्य रक्षोगण आदि विविध प्रकार के भूतसमूहों से भी मारे जाते हैं ।

तथा १ भिशापप्रभावस्याधर्म एव हेतु र्भवति : ये लुप्तधर्माणो धर्मादपेतास्ते गुरुबृद्धसिद्धर्षिपूज्यानवमत्याहितान्याचरन्ति, ततस्ता : प्रजागुर्वादिभिरभिशप्ता भस्मः तामुपयान्ति, प्रागेवानेकपुरुषकुलविनाशाय, नियतप्रत्ययोपलभ्यान्यताः, अनियतप्रत्ययोपलभ्यदनियताश्चापरे ॥ 26 ॥

अभिशाप से उत्पन्न होने वाले जनपदोद्धृतंस का भी अधर्म ही हेतु है जो लुप्त धार्मिक व धर्म भी च्युत हैं, वह गुरु, बृद्ध सिद्ध आचार्य, इनकी अवज्ञा करके अहितकर्म करते हैं तब अनेक पुरुषों के नाश के लिये गुरु आदि द्वारा शाप दिये जाने पर वे प्रजायें शीघ्र ही भस्म हो जाती हैं – नष्ट हो जाती है – नियत कारण की उपलब्धि से आयु नियत और अनियत कारण की उपलब्धि से आयु अनियत होती है ।

## वैज्ञानिक दृष्टि से पुण्य-पाप का फल

डॉ. जगदीशचन्द्र बसु की खोज ने यह सिद्ध किया है कि धरती के गर्भ में जो भी है, वह संवेदनीलता से भरपूर है, इसलिए यह संभव ही नहीं है कि ब्रह्मांड (युनिवर्स) में कहीं भी, कुछ भी घटित हो और उसका एक दूसरे पर प्रभाव न पड़े । सिर्फ जड़ भौतिक घटनाएँ ही विश्व या ब्रह्मांड को प्रभावित करती हैं ऐसा नहीं है, बल्कि ये इस पर निवास करने वाले जीवधारियों से भी संबंधित हैं ।

‘विसोलॉजी’

विसोलॉजी ज्ञान की वह शाखा है, जो ब्रेकडाउन ऑफ इंटीग्रेटेड सिस्टम्स

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

(समन्वित व्यवस्थाओं के बिंबंग अर्थात् टूटने) के कारणों की खोज करती है) वह ज्ञान जिसका संबंध अत्यन्त सूक्ष्म संकेतों के अनुबंधन की व्याख्या से विसोलॉजी है । भारत के इन वैज्ञानिकों ने समस्याओं की तह में उत्तरने की तरक्की संगत कोशिश की है । यह खोज अहिंसा और सहअस्तित्व, प्रकृति और पर्यावरण, मानवता और करुणाके क्षेत्र में एक नये अध्याय की शुरुआत है ।

भूकम्प, समुन्द्री तूफान, चक्रवात, Hurricanes सूखा, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अकाल, दुर्भिक्ष इत्यादि जीव हत्या से पनपते हैं । मांसाहार से 300 प्रकार के रोगों का जन्म होता है, और BIS vector fields से Astronomical dynamics पर भी असर पड़ रहा है । हमारा कर्तव्य है कि हम इसको रोकें और हिंसा के बढ़ते कदमों को अवरुद्ध कर दें । पिछले लगभग 10 वर्षों में BISOLOGY नाम का नया विषय उभरा है । इस क्षेत्र में काफ़ी विकास भी हुआ है । आज BISOLOGY की 52 शाखाएँ हमारे सामने हैं । BISOPATHY और BISOTHERAPY<sup>1</sup> नाम की दो नूतन चिकित्सा पन्द्रहियां भी उभर कर मानवीय ज्ञान के क्षितिज पर आ गई हैं । BISTRAUMATOLOGY नाम से एक सशक्त विज्ञान विद्या का जन्म हो चूका है । यदि आप चाहते हैं कि दुर्घटनाएँ न हों तो हिंसा मत कीजिए । मांसाहार से प्रत्येक व्यक्ति के शरीर पर BUISLoad बढ़ता जाता है । BIS Load की परिभाषा है :

$$Z \text{ BIS} = \frac{W}{W} \times 100\%$$

जब मनुष्य के शरीर पर 90 nemi का BIS Load हो जाता है तब उसे Alzheimer रोग, कैंसर आदि हो जाते हैं ।

अहिंसा और शाकाहार को अपनाकर हम विश्व के 70% मेडिकल खर्च बचा सकते हैं । अहिंसा का मार्ग हम सबके कल्याण का मार्ग है ।

### BIS Effect और अर्थर्ववेद का पृथिवीसूक्त :

अर्थर्ववेद हमारी मानवीय सभ्यता का एक आधारभूत ग्रंथ है । इसके पृथिवीसूक्त में 63 मन्त्र हैं । अर्थर्ववेद के 12 वें काण्ड के प्रथम सूक्त को ही हम पृथिवीसूक्त कहते हैं । इस काण्ड को सबसे पहली बार अर्थर्वा नामक ऋषिने प्रस्तुत किया था और यह सूक्त भूमि से सम्बन्धित है । BIS Effect पर जब हमारी पहली पुस्तक प्रकाशित हुई थी, हमने इसमें “माताभूमिः पूत्रो अहं पृथिव्याः” की

## \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

यहाँ की थी। इस समय तक हमें यह नहीं ज्ञात था कि अर्थर्ववेद के 12 वें काण्ड का प्रथम सूक्त पूर्ण रूपेण BIS Effect का समर्थन करता है। लम्बे अनुसंधान के उपरान्त हमें यह पता चला है कि BIS Effect कई प्रकार का होता है।

- 1) Linear BIS Effect
  - 2) Non-Linear BIS Effect
  - 3) Circular BIS Effect
  - 4) Elliptical BIS Effect
  - 5) Parabolic BIS Effect
  - 6) Hyperbolic BIS Effect
  - 7) Polarized BIS Effect
  - 8) Un-polarized BIS Effect
  - 9) Co-herent BIS Effect
  - 10) In coherent BIS Effect
- इन दस प्रकार के BIS Effects के कारण कई प्रकार के समुद्री तूफान और झंझावात आते हैं।

### Hyperbolic BIS Effect

यह एक अत्यन्त दिलचस्प Type का Microscopic Effect हैं, जो जब जन्मता है जब समुद्री जीवों को पकड़ने के लिये Ships अथवा Vessels Hyperbolic path पर चलते हैं Hyperbolic paths पर उत्पन्न Acquatic turbulence से Atmospheric pressure बढ़ले जाते हैं। जब Kelvin - Helmholtz instabilities hyperbolic paths पर generate होती है और  $xy = c$  की शर्तें पूरी हो जाती हैं, तो हवा Hyperbolic paths पर दौड़ने लगती है। ये हवाएं तब तक चलती रहती हैं जब तक समुद्री वायुदाब धरती के वायुदाब के बराबर नहीं हो जाता।

अर्थर्ववेद का पृथ्वीसूक्त का 31 वाँ मन्त्र भी कहता है:

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीचीर्यास्ते भूमे अधराद्याश्च पश्चात् ।

स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु मा नि पत्यं भुवने शिश्रियाणः।

अर्थात् तेरे ऊपर वसुन्धरो में जब करता होऊ विचरण

पूर्वोत्तर - दक्षिण - पश्चिम - दिक् करें मुझे नित सुख वितरण ।

तेरे भुवन मध्य आश्रय ले स्वस्थ सुखी हो मेरा तन,

सदा समुन्नतिशील बनू मैं, हो न कभी मन अधः पतन ।

### Parabolic BIS Effect

यह प्रायः अमरीका के आस-पास देखे गए हैं। इसमें हवाएं  $y^2 = 4ax$  का रोल

## \*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

अपनाती है। जब समुद्रीयान Parabolic path पर समुद्री जीवों को पकड़ते हैं तब Parabolic BIS Effect भी पैदा हो जाता है और हवाएं समुद्र से धरती की और Parabolic का vertex समुद्रीतट से 50 कि.मी. दूर हो सकता है। यह दूरी अलग-अलग स्थितियों पर निर्भर करती है।

### Polarized BIS Effect

जब हमारी बाहरी स्थितियों के द्वारा BIS Effect को किसी विशिष्ट दिशा में झुका देते हैं तब उसे Polarized BIS Effect कहते हैं।

### Unpolarized BIS Effect

जब BIS Effect पर किसी भी बाहरी source का प्रभाव नहीं डाला जाता हैं, तब उसे Unpolarized BIS Effect की उत्पत्ति होती हैं।

### Coherent BIS Effect

जब किसी विशिष्ट कारण से कई जानवरों को जबरन मौत के घाट उतारा जाता हैं तब Coherent BIS Effect की उत्पत्ति होती हैं।

### Incoherent BIS Effect

जब जीव हत्या किसी Well planned तरीके से न होकर इधर-उधर, यदा-कदा कर दी जाती हैं, तब उसे Incoherent BIS Effect कहते हैं।

### BIS Effect

BIS Effect का मतलब है कि Integrated Systems का सत्यानाश करना। दुनिया में दो प्रकार के Systems होते हैं।

1. Differential System
2. Integral System

### Differential System

Differential System तभी काम करता है जब वह किसी Integral System को पार्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए हमारी आंखे Differential System हैं और हमारा पूरा शरीर Integral System है। क्योंकि एक अकेली आंख कुछ नहीं

\*\*\*\*\* हिंसामय यज्ञ का प्रारम्भ क्यों ? \*\*\*\*\*

कर सकती, लेकिन यदि वहीं आंख किसी Integral System में हो तो वह सारी परिक्रियाएं कर सकती है।

**Integral System :**

Integral System वह है, जो स्वयं काम कर सकता है।

आज की आवश्यकता है कि हम ANTI-BIS Effect को Prompt करें और Integral BIS Effect से होने वाली हानियों से जनता को आगाह करें। यदि हम समुद्री Integral BIS Effect को रोक दें तो एक भी चक्रवात नहीं आयेगा और यदि थल पर होने वाली हिंसा को हम छोड़ दें और युद्ध द्वारा जीवों की हिंसा न करें तो समस्त आने वाले भूकम्पों को रोका जा सकता है। हमारे इस कथन की कठोर जांच हो चुकी है। भविष्य में भी निष्पक्ष रूप से जांच की जानी चाहिये।

डॉ. एम.एम. जैन (बजाज)

डॉ. एम.एस.एम. इब्राहीम (मुसलमान)

डॉ. विजयराज सिंह (हिन्दू)



आचार्य श्री कनकनन्दीजी गुरुदेव द्वारा रचित ग्रंथो का विमोचन करते हुए श्रीपालजी ढोलिया (उदयपुर - राजस्थान) साथमें हैं अभ्यकुमार संजयकुमार जैन टूण्डला (यू.पी.)

द्रव्यदाता एवं शिरोमणी सदस्य (डलास—अमरीका) श्री प्रद्युमन झवेरी  
एवं श्रीमति धनलक्ष्मी झवेरी अपने परिवार के साथ



धर्मचार्य श्री कनकनंदीजी से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए  
द्रव्यदाता एवं शिरोमणी सदस्य (डलास—अमरीका) श्री प्रद्युमन झवेरी  
एवं श्रीमति धनलक्ष्मी झवेरी।